प्रकाशक—
नाथ मंडल,
आकोला (म० प्रा०)

मुद्रक—
राज नारायण अग्रवाल बी० ए०,
मॉडर्न प्रेस, आगरा।

दो शब्द

आत्म-विजय का दूसरा भाग श्री नाथ मण्डल आकोला की ओर से प्रेमी पाठकों को सादर करते हमें बहुत आनन्द होता है। श्री भगवान् भोलानाथ जी की असीम कृपा के ही कारण यह भाग्य आकोला निवासियों को प्राप्त हुए। यह प्रभु की एक अपार लीला है। अत्यन्त सरल शब्दों में आत्म-विजय की कठिन से कठिन समस्या, सरल और मीठी भाषा में बतलाने की कला सिर्फ श्री भगवान् भोलानाथजी के सिवा और किसी को असम्भव है! आत्म-विजय चार भागों में छपाने का निश्चय हुआ है, और उसके अनुसार छपाई का आधा कार्य हो ही गया है। आत्म-विजय किस मार्ग से होगा इसका केवल अनुमान ही नहीं बल्कि वह मार्ग ही प्रेमी भक्तों को दीखने लगता है। इस ग्रन्थ में ईश्वरीय प्रेम और श्रद्धा का प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है, और पाठकों के हृदय में ईश्वर प्रेम की जागृति होकर इस संसार मे किस तरह रहना इसका उपदेश भी किया गया है। इसी प्रकार हर एक सांसारिक कर्म और बातें प्रभू की आज्ञा से ही होती हैं, और उसका फल भी प्रभू की असीम कृपा से ही मिलता है। इसी भावना से प्रत्येक प्रेमी भक्त प्रभू को आत्म-समर्पण करके उसके पूर्णत्त्व में मग्न होकर अपना जीवन प्रेममय और सुखमय बना सकता है।

यह ग्रन्थ केवल अर्थ ही से मूल्यवान नहीं वल्कि मंत्रमय भी है, इसका पढ़ना ही पूजन है, इसका अध्ययन करना ही ध्यान योग है और इसका आचरण ही जीवन का अंतिम रहस्य है; ऐसा अनुभव प्रेमी-पाठकों को आयगा, ऐसी आशा है।

श्री भगवान् भोलानाथजी ने यह प्रेमामृत ग्रन्थरूप से आपके सामने रक्खा है, इसका स्वाद और लाभ प्रेमी पाठक अवश्य लें ऐसी सुबुद्धि प्रभू उन्हें दे।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

श्री नाथ मंडल

आकोला

विषय-सूची

❀ ॐ श्री ❀

अखिल जगत् सेवक
श्री स्वामी भोलानाथजी भगवान





श्री जगन्माता मातेश्वरी
सावित्री देवीजी



जय जय भोलानाथजी
आया शरण तिहारी प्रभुजी,
प्रेम की बरसात करो,
दुख दर्द हमारे दूर करो,
साथ हमेशा रहा करो,
कृपा करो !—कृपा करो !!
प्रभू नाथजी ! ! ! जय जय ।

गायक-बाल भागवन

जय जय जय जय मातेश्वरी ॥
जगत जननी मंगलकारी ॥ धृ० ॥
हम बालक हैं मूढ़ अग्यानी
अपार महिमा, शक्ति न जानी
शरण आय बिनती इतनी—
बरसो मैय्या कृपा तुम्हारी—
जय जय जय जय मातेश्वरी ॥

—बाल ओंकरकर

ॐ जय श्री बाबाजी भगवान् की।

भूमिका

संसार की दौड़ धूप के अन्दर अगर गौर से देखा जाए तो एक ही चीज़ पाई जाती है और वह है एक ऐसी अवस्था की तलाश कि जहाँ पहुँच कर और जिसे हासिल करके न तो कुछ और पाना बाकी रहे और न पाये हुए को खोने की फिक्र रहे और न प्राप्त की रक्षा का ख्याल ही सामने रहे। दूसरे शब्दों मे यह उस अवस्था का का नाम है कि जहाँ दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाए और इच्छाऐं इच्छा के रूप में अपना मुँह न दिखा सकें। या मनुष्य जिसे पाकर कुछ ऐसा मग्न हो जाये जो उसको सिवाय एक तत्त्व के दूसरे का भान असम्भव हो जाए। यहाँ तक कि उस तत्त्व के अनुभव में अपने अस्तित्व का ख्याल भी बाकी न रहे क्योंकि जब तक ध्याता ध्येय से अलहदा रहेगा या ज्ञाता ज्ञेय से भिन्न रहेगा उस समय तक तीसरा पदार्थ जो कि दोनों मे द्वैत भाव को कायम करता है जरूर मौजूद रहेगा। अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय या ध्याता, ध्यान, ध्येय की त्रिपुटी जब तक बनी रहेगी तब तक इन तीनों को अलहदा करने वाला एक चौथा पदार्थ और न बन जाएगा। दूसरे शब्दों में प्रकृति अपने पूर्ण रूप मे अपने नानात्व को लिये हुए प्रतिकूल और अप्रतिकूल को सामने रखती रहेगी और जब तक यह दृश्य रहेगा मनुष्य बड़ाई और छोटाई के ख्याल को न छोड़ सकेगा और जब तक यह बना रहेगा ग्रहण और त्याग अवश्य सामने रहेंगे और जब तक ये सामने रहेंगे। दुःख और सुख भी सामने रहेंगे। क्योंकि एक चीज़ को छोड़ने का ख्याल उसी समय हो सकता है कि जब उसमें कोई त्रुटि हो। जब तक त्रुटि सामने है किसी और अवस्था को पानेकी इच्छा बाकी रहेगी। यह बात मौजूदा अवस्था में असंतोष

८१५

पैदा करेगी। और असंतोष दुःख का कारण बनते हुए किसी ऐसी अवस्था की चाहना पैदा करेगा जहाँ पहुँच कर सन्तोष सामने आ सके। जब तक यह ग्रहण और त्याग का चक्र बना रहेगा तब तक मनुष्य न तो पूर्ण ही हो सकता है और न पूर्ण तत्त्व की प्राप्ति का दावा ही कर सकता है। इसलिए वह अवस्था वह है कि जहाँ ध्याता को अपना ज्ञान नहीं और ज्ञाता अपने को भूल चुका है। जब ज्ञाता को अपना ज्ञान नहीं तो ज्ञेय का अस्तित्व असम्भव हो जायगा और जब ज्ञेय भी नहीं तो ज्ञान किसका? यहाँ ज्ञान अज्ञान की अपेक्षा को भी छोड़ देता है। प्रकृति का पसारा नानात्व को गुम करता हुआ एकत्व के भाव से भी ऊपर हो जाता है। बस यह अवस्था वह है कि जहाँ पहुँचकर फ़िक्र, भय, अशान्ति, दुःख सब दूर हो जाते हैं—सिर्फ़ दूर ही नहीं होते बल्कि इस तरह गुम हो जाते हैं कि जैसे रज्जु के ज्ञान के पश्चात् सर्प का अभाव हो जाता है अर्थात् उनका त्रिकाल में होना ही असम्भव हो जाता है। पस वह नहीं रहे यह भी पहिले "है" के ज्ञान की अपेक्षा से कहा जा सकता है वर्ना कहना तो यूँ चाहिये कि जो कभी नहीं था वही नहीं रहा। यह स्थान परम शान्ति, एवं परमानंद का है।

लेकिन इस अवस्था का सम्बन्ध उस अवस्था से नहीं कि जहाँ मनुष्य को संसार चक्र की बाह्य प्रतीति भी न हो बल्कि देह की कल्पना से जगत को सामने रख कर कुल कार्य करता हुआ भी उस अवस्था में रह सकता है कि जहाँ सब कुछ नज़र आने पर भी कुछ नज़र नहीं आता या सब कार्य करते हुए भी कोई कर्म नहीं किया जाता। बुलबुले का अस्तित्व एक ही समय में बुलबुले का रूपाकार भी है और थरथराहट भी है और जल दृष्टि में उसका अत्यन्त अभाव भी है। यहाँ तीन नज़रें पैदा हो जाती हैं—पहिली, जो केवल बुलबुले को देखती है—दूसरी, जो केवल जल को देखती है—तीसरी, जो जल और बुलबुले को देखती है—पहिली, भ्रम की

दृष्टि है और दुःख से बच नहीं सकती क्योंकि बुलबुले के बनने में उसके टूटने का भय शामिल है। और जहाँ भय है वहाँ सुख नहीं। यह वह नज़र है कि जहाँ मनुष्य प्रकृति के बाह्य रूप को देखता हुआ उसके आंतरिक मर्म को नहीं समझता और अपने जीवन को इन्हीं चीज़ों के ग्रहण और त्याग में समाप्त कर देता है, जीवन भर संतोष और शान्ति को तलाश करता हुआ सिवाय अशान्ति के और कुछ नहीं देखता। कभी इस चीज़ को ढूँढ़ता है कभी उस चीज़ को। कभी इसकी तलाश करता है और कभी उसकी। लेकिन हर समय असफलता का मुँह देखना पड़ता है। एक अवस्था को छोड़कर जब दूसरी अवस्था में पहुँचता है तो वहाँ भी उसको वही चीज़ नज़र आती है कि जिसको वह छोड़ कर आया था। नतीजा यह होता है कि मृगतृष्णा के जलवत् धोके का शिकार बनता रहता है और आख़िर कहता है कि अफ़सोस! मुझे जिस चीज़ की तलाश थी मैं अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद भी उसे न पा सका और फिर कहता है—

वाए नाकामी फ़लक ने ताक कर तोड़ा उसे।
मैंने जिस डाली को तोड़ा आशियाने के लिये॥

अर्थात् मैंने जिस चीज़ से सम्बन्ध जोड़कर उसका सहारा लेना चाहा वह चीज़ ही जाती रही। संयोग में वियोग सामने आया जिसने संयोग के सुख को खराब कर दिया। दुबारा, संयोग में सुख इसलिये कम होगया कि संयोग के साथ वियोग का ख्याल भी सामने आने लगा। सुख इस लिए सुख न रहा कि वह चला गया और जब दुबारा सुख मिला फिर सुख इसलिए नज़र न आया कि उसमें चले जाने का ख्याल शामिल था। अफसोस, सुख की इच्छा दुःख साबित हुई। सुख आकर चला गया इसलिए भी दुःख हुआ। और जब तक सुख रहा वह भी दुःख रूप इसलिए हुआ कि प्रकृति के नियमानुसार वह एक जाने वाली चीज़ थी।

चूं नशीनम दर चमन बर बर्गे गुल लरजां शुदा।
चूं नसीमे सुबहो-दम ख्वाहद मरा बर्बाद कर्द॥

अर्थात् जल की बूंद या क़तरा कहता है कि मैं संसार की वाटिका में पुष्प की अति कोमल और सुगंधित पत्तियों पर किस तरह संतुष्ट होकर बैठ सकता हूँ जब कि हवा की लहरें मुझे गिराने पर तुली हुई हैं। तमाम सुख को बरबाद करने के लिए पुष्प की पत्ती से फिसल जाने का ख्याल काफ़ी है। गोया सुख में सुख के अभाव का ख़याल भी दुःख से कम नहीं : इस तरह सुख में भी सुख न मिल सका। जब तक हम भोजन कर रहे हैं और ग्रास मुँह को तरफ़ जा रहे हैं तब तक यह बात ज़ाहिर है कि हम रज नहीं रुके। जुगनू के सामने सितारे चमक रहे हैं। सितारों के सामने चन्द्रमा, और फिर सूरज और सूरज के सामने कोई और प्रकाश कि जिससे सूरज भी अपना प्रकाश लेकर आता है। और यह धारा कहीं समाप्त न होती हुई हर एक के सामने कमी को पैदा करती है और दूसरी चीज़ की तलाश का ख़याल पैदा कर देती है। जुगनू तारे बनकर इस लिए संतुष्ट नहीं हो सकते कि उनके सामने चन्द्रमा मौजूद है। जब इस शृङ्खला का किनारा ही कोई नहीं तो फिर सब बीच ही में रह गये और एक दूसरे को देखकर मौजूदा अवस्था में असंतुष्ट ही रहे। एक को छोड़कर दूसरी को पाना इसलिए बेकार हुआ कि वहाँ पहुँच कर वही बात सामने आई कि जिसको छोड़कर आये थे। सचमुच में, जब तक किसी को सुख की तलाश है वह दुःखी है। इससे क्या सम्बन्ध कि यह जीवन की कौनसी सीढ़ी पर है। जब तक और बढ़ने की इच्छा बाकी है उसने तरक्की नहीं की। जब तक खा रहा है, भूखा है। जब तक दौड़ रहा है, मंजिल पर नहीं पहुँचा। और कुछ पहली दृष्टि में जो कि संसार के चक्र में फँसी हुई है इस दौड़-धूप से मुक्त नहीं।

किसी शख्स ने एक महात्मा से कहा कि आपकी कृपा से मेरे पास संसार के यह और वह पदार्थ मौजूद हैं। मैं काफी अमीर हूँ। महात्मा ने हँसकर पूछा कि अब अमीर बनने की इच्छा तो बाकी न रही होगी तो उसने कहा कि वह तो है। तब महात्मा ने हँसकर कहा कि जब अमीर बनने की इच्छा मौजूद है तो तुम अमीर कैसे हुए? अमीर बनने की इच्छा तो हमेशा ग़रीब में होती है। इसलिए जब तक अमीरी की इच्छा तुम में बाकी है तुम ग़रीब ही होगे। वह कहने लगा "महाराज! मैं बहुत सुखी हूँ"। महात्मा ने हँसकर पूछा अब और सुख की इच्छा तो बाकी नहीं रही? तो कहने लगा वह तो है। महात्मा ने कहा कि सुख की इच्छा सिर्फ दुखी में ही हो सकती है, सुखी में नहीं क्योंकि अगर सुखी को सुख की तलाश है तो वह सुखी कैसे हुआ?

पस, संसार के चक्र में या तो मनुष्य सुख की तलाश में दौड़ रहा है और या और सामान एकत्रित करने की फिक्र में लगा हुआ है। बस जब तक ये दो बातें मौजूद हैं मनुष्य को शान्ति नहीं मिल सकती। और जब तक इन पदार्थों के होने न होने का ख्याल मौजूद है तब तक भी मनुष्य को चैन नहीं मिल सकता।

मैंने एक दिन हँसकर कहा कि मनुष्य जीवन का आनन्द कभी नहीं लेता। जब तक जीता है मौत से डरता है। और जब मरने लगता है तो जीने की इच्छा करता है। गोया जीवन का सुख तो मौत के भय से गया और मरने का आनन्द जीने की इच्छा ने खराब कर दिया। गोया दोनों तरफ बेचैनी सामने रही। पस, जीवन का सुख दुःख में बदल गया।

हमें इस बात को जानने के लिए युक्ति, दलील और बड़ी बड़ी बातों की जरूरत नहीं। हम अपने अन्दर झाँक कर देख सकते हैं कि जहाँ हम बैठे हैं वह पहिले बयान की हुई हालतों में से कौनसी हालत है। हम संतुष्ट हैं या असंतुष्ट हैं? क्या आज तक के Struggle

पुरुषार्थ ने हमको इस मंजिल तक पहुँचा दिया है कि जहाँ पहुँचकर आगे कहीं जाने की इच्छा खत्म हो गई है। या इतने वर्ष जीवन के गुज़र जाने पर अभी तक वही मंजिल सामने है कि जहाँ से हम शुरू हुए थे। जब इसका जवाब इस रूप में मिलेगा कि जीवन की प्यास अभी बुझी नहीं और यह रास्ता उसको बुझाने के लिए काफ़ी नहीं है कि जिस पर आज तक हम चलते रहे हैं तो ज़रूरी है कि हमारे दिल में किसी ऐसे रास्ते की तलाश पैदा हो जाय कि जिस पर चलकर मनुष्य की प्यास बुझ सके।

उम्र का हिस्सा बहुत कम है जिसमें से कुछ तो बीत ही चुका है और जो आया नहीं उसके लिये निश्चय ही नहीं कि आयेगा या नहीं, और जो पास है वह निकला जा रहा है। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए कौनसा समय नियत कर रखा है—वह जो कि गुज़र गया है, या वह जो कि आया नहीं—जिसका यह भी विश्वास नहीं कि वह आयेगा भी या नहीं, या वह जो हाथ से निकल रहा है। अफ़सोस,

आया है तू जहान में मिसाले शरार देख।
दम दे न जाये हस्तिए ना-पायेदार देख॥

अर्थात् इस जहान में तू बिजली की चमक के समान आया है जो कि चमकने के पहिले ही ख़त्म हो रही है। उस पर यह आलस्य, यह सुस्ती, यह Stagnation तो कुछ शोभा नहीं देता। अगर तुझे अपने घर की आग बुझाने की चिन्ता नहीं तो फिर तेरे लिये और कौन चिन्ता करेगा? अगर तू अपनी भूख को दूर करने के सामान पैदा करना नहीं चाहता तो फिर और कौन करेगा? जीवन का गुज़रा हुआ हिस्सा इस बात का प्रमाण है कि तेरा भविष्यत् भी भूतकाल बनकर तुझे निराशा के उस गड्ढे में फेंकना चाहता है कि जहाँ समय न रहने पर तुझे यह शेर पढ़ना पड़ेगा—

हम सा न कोई दहर में आयेगा बद,क़ुमार
जो चाल हम चले सो निहायत बुरी चले,

अर्थात् इस संसार में हमसा बुरा दाँव लगाने वाला कोई दूसरा न होगा क्योंकि जीवन में हम जो चाल भी चले वह ऐसी चले जिमसे न तो भगवान ही मिल सके और न दुनिया ही में संतुष्ट हो सके। ज़रा ग़ौर का मुक़ाम है कि अगर आज तक की दौड़ धूप ने हमें किसी ठीक नतीजे पर नहीं पहुँचाया तो फिर इसी तरह की और दौड़ धूप हमें किस तरह किसी नेक नतीजें पर पहुँचायेगी। बच्चे को आग का कोयला सुलगता नज़र आया। उसने उसे पकड़ना चाहा। माँ ने रोका लेकिन उसने एक न मानी। आखिर हाथ जला ही बैठा। दूसरे दिन माँ ने यह देखने के लिये कि बच्चे पर पहले दिन के तजुर्बे का क्या असर हुआ एक सुलगते हुए अँगारे की अँगीठी उसके सामने ला रखी और कहा कि बेटा! इनसे खेलो। कितने सुन्दर चमकते हुए सुर्ख़-सुर्ख़ खिलौने हैं? लेकिन बच्चे ने उन्हें छूना तो दर किनार उनसे परे हटने की कोशिश की और कहा कि माँ! क्या इम्तिहान ले रही हो। यह देखने को चाहे कितने ही सुन्दर हों लेकिन इनका स्पर्श वही काम करेगा जो कि कल उस सुलगते हुए अँगारे ने किया है। मेरा इनसे हटने के लिए कल का तजुर्बा काफी है। मैं एक दफा हाथ जला चुका हूँ। दुबारा ऐसी भूल न करूँगा। माँ ने कहा कि बेटा! मेरी हज़ार बातों का तुम पर असर न हुआ किन्तु तुम्हारे जीवन की ठोकर ने तुम्हें वह सबक पढ़ा ही दिया जिसको मैं हज़ार तरह से सिखलाना चाहती थी। बच्चे के एक छोटे से तजुर्बे ने उसका हाथ दूसरी बार न जलने दिया लेकिन मनुष्य अपनी बुद्धि-मत्ता का नाज़ करता हुआ दुबारा उन्हीं बातों की तरफ़ दौड़ता है कि जिनसे हर बार ठुकराया जा चुका है।

जो समय निकल चुका है फिर न आयेगा इसलिये उस जीवन के समय को कि जो हाथ मे है क्यों बरबाद किया जाय? या तो उसको

नयी चीज़ की तलाश में ख़त्म कर दिया जाय या उससे कोई नई चीज़ हासिल कर ली जाय। दुनिया का चक्र तो देख ही लिया। अगर इसमे वह चीज़ मिल गई है कि जिसकी दिल को तलाश थी तो क़िस्सा ही ख़त्म कीजिए और अगर नहीं मिली तो मर्दानावार बाहर निकालिए और जीवन के बाकी लमहों को उसकी तलाश में ख़त्म कर दीजिए कि जिसने आपको ज़िन्दगी का इतना बड़ा हिस्सा दिया।

एक महात्मा ने एक बच्चे से कहा—भगवान् को याद करो। उसने कहा क्षमा कीजिए, यह मेरा खेलने का समय है। जब उसके जवान होने पर महात्मा ने कहा कि भगवान् की याद करो, तो उसने कहा कि मेरे हाल पर रहम कीजिए। यह मेरा खाने-पीने का समय है, ऐश आराम का वक्त है। कुछ तो दुनियाँ भोग लूँ। जब वह बूढ़ा हो गया तो महात्मा फिर आये और भगवान् की याद के लिये कहा तो कहने लगा कि असमर्थता यहाँ तक बढ़ गई है कि शारीरिक दुःखों से पीड़ित हुआ भगवान् का नाम ही लेने लायक न रहा। महात्मा हँसे और कहा—बेटा! प्रभु-स्मरण के लिये सबसे अच्छा समय वही है कि जहाँ से तुम शुरू कर सको बल्कि वही क्षण जो कि गुज़र रहा है उसे गुज़रने से पहिले उसका बना दो। काल का शाप मत लो। समय भी कहता है—"मैं उस मनुष्य के पास जाकर धन्य हो जाता हूँ कि जो मुझे प्रभो की याद मे लगा देता है।"

हज़रत ईसा से जब पूछा गया कि ज़िन्दगी को किस तरफ़ लगाना चाहिए—'संसार या 'भगवान की तरफ़' तो उन्होंने जवाब दिया कि पहिले ईश्वरीय राज्य और उसकी सचाई को ग्रहण कर लो बाकी बातों के लिए चिन्ता न करो क्योंकि इस अनुभव के बाद बाकी चीज़ें ख़ुद ही आपके पीछे दौड़ेंगी। वेदान्त सूत्र में भी यही लिखा है—'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' अर्थात् मनुष्य शरीर धारण करके ब्रह्म को जानने की इच्छा पैदा करो। संसार में दुःख का भान क्षण-

क्षण में शिक्षा दे रहा है कि यह सुख का स्थान नहीं—किसी ऐसी चीज़ की तलाश करो जहाँ दुःख का अभाव हो।

एक आदमी ने पूछा—महात्माओं पर अक्सर दुःख क्यों आते रहते हैं ? मैंने कहा—भयानक स्वप्न जगाने का काम करते हैं, कड़वी क्विनीन से बुखार टूटता है। नश्तर मवाद निकालता है। गुरू नानकदेवजी महाराज ने भी फरमाया है कि,

"दुःख दारू सुख रोग भया"

अर्थात् संसार में दुःख का तत्त्व (Element) ही एक ऐसी चीज़ है जो सुख की तलाश में ब्रह्म-जिज्ञासा पैदा करता है वर्ना अगर संसार में दुःख न होता ईश्वरत्त्व का भी अभाव हो जाता और अगर उसकी भाव रूपता बनी भी रहती तो वह इसलिये निरर्थक हो जाती कि जिस चीज़ को पाने के लिये उसको तलाश करनी थी उस चीज़ के पहिले मिल जाने से वह तलाश बेकार हो जाती है। अगर आपको हमेशा के लिए प्यास नहीं लगती है तो आपके लिए जल का भाव अभाव रूप-सा हो जायगा।

इधर सुख की इच्छा है, वह संसार में मिल नहीं रहा है। इसलिये उसके लिए किसी दूसरे तत्त्व की आवश्यकता है। हमारी यह आवश्यकता ही भगवान् के मुँह से परदे को उठाती है और जिज्ञासा उत्पन्न करती है।

मज़हब, धर्म या Religion कोई कपोल कल्पित या बनाई हुई चीज़ नहीं है बल्कि जीवन की आवश्यकताओं का जवाब मज़हब धर्म या Religion है। जब जीवन में सुख नहीं मिलता तो जीवन का चक्र ही इस दुनिया के अलावा किसी और चीज़ की खोज में लग जाता है। अगर आप किसी जंगल में कुछ आदमियों को हज़ारों वर्ष तक छोड़ दें तो आप देखेंगे कि उनके अन्दर की न बुझती हुई प्यास ख़ुद ही एक ऐसी चीज़ की तलाश में लग जायेगी कि जिसके मुतल्लिक़ महात्मा ऋषि पुकार २ कर कह रहे हैं। उसके

जानने की फ़िक्र करो कि जिसके जानने पर और कुछ जानना बाकी न रहेगा।

संसार में दुःख के अनुभव ने गौतम बुद्ध को भगवान बुद्ध का दरजा दिया। इसी ने ऋषियों के दिमाग़ में इस तत्व के लिये खोज पैदा की कि जिसके जान लेने पर उन्होंने इसी दुःख का अत्यन्त अभाव कर दिया।

प्यास सीख कर नहीं लगती। भूख शिक्षा लेने के बाद नहीं मालूम होती। परवाना पढ़ कर दीपक से प्रेम नहीं करता। बुलबुल स्वभावत: पुष्प से प्रेम करती है। चुंबक में लोहे का आकर्षण किसी शिक्षा का नतीजा नहीं है। इसी प्रकार जहाँ २ ज़िन्दगी है उसके अन्दर की स्वाभाविक जिज्ञासा, तलाश, दौड़-धूप संसार के लिये नहीं बल्कि भगवान् के लिए है। यह अलहदा बात है कि वह उसको तलाश करते करते दुनिया भर की चीज़ें छान डाले लेकिन खोज केवल एक ही चीज़ के लिये है और वह है भगवान्। योगी जिस चीज़ को योग में ढूँढ़ते हैं, सांसारिक पुरुष उसी वस्तु को संसार में ढूँढ़ रहे हैं। तलाश दोनों के अन्दर एक ही चीज़ की है। हर पानी की बूँद उड़कर जल ही से मिलना चाहती है। हर आग की चिनगारी आग ही की तरफ दौड़ती है। यह अलहदा बात है कि कोई बूँद कहीं से उड़ रही है और कोई कहीं से। योगी, ब्रह्मज्ञानी, ऋषि महात्मा भी आराम की तलाश में हैं। और उस आराम को पाने के लिये आ राम आ राम कह रहे हैं। सांसारिक पुरुष भी उसी आराम को ढूँढ़ रहे हैं। पूर्ण आराम किसमें है और परमानन्द की प्राप्ति कैसे हो सकती है। यह दूसरी बात है। लेकिन यह मान लेने में किसी को इन्कार नहीं कि तलाश दोनों में सिर्फ एक ही चीज़ के लिए है। बुलबुल पुष्प से प्रेम करती है और पतंगा दीपक से। लेकिन दोनों में चाहने वाला चीज़ प्रेम है, और चाही गई चीज़ सौन्दर्य। अगर बुलबुल किसी कारण से दीपक में भी वह सौन्दर्य

देख सके कि जिसको वह पुष्प में देख सकती है तो उसे दीपक उतना ही प्यारा हो जायगा जितना कि पुष्प। जिस प्रकार चाहने वाला तत्व प्रेम है और चाहा गया सौन्दर्य उसी प्रकार मनुष्य मात्र बल्कि प्राणी मात्र में चाहने वाली चीज जिज्ञासा और चाही गई चीज ब्रह्म तत्व है। जिस प्रकार बुलबुल और पतंगे का ध्येय भिन्न-भिन्न है उसी प्रकार जीवन् के स्वाभाविक खोज में चाही गई चीज भिन्न-भिन्न है।

Science विज्ञान ने उसको Materialism प्राकृतिक पदार्थों में ढूँढने की फिक्र की लेकिन Religion मजहब ने उसकी तलाश में अपना दूसरा निशान मुक़र्रर किया। एक के सामने दुनिया है, दूसरे के सामने दुनिया वाला।

तेरा मक़सूद कोई है मेरा मतलूब कोई है।
मगर मफ़हूम दोनों का ब चश्मे गौर वो ही है॥

अर्थात् आप किसी चीज की तरफ दौड़े जा रहे हैं और मैं किसी की तरफ। लेकिन दोनों के परदे में आकर्षण एक ही चीज का है। अनेकता में एकता (Unity in diversity) के सिद्धान्त को सामने रखते हुये संसार के नानात्व का एकत्व सिर्फ इन दो शब्दों में खत्म हो जाता है। अव्वल, खोज। दूसरे, खोज किया गया तत्व, जिज्ञासा या ब्रह्मतत्व। प्रेम या सौन्दर्य। संक्षेप में, सुख और उसकी तलाश। यह एक ऐसी बात है जिससे इनकार हो ही नहीं सकता। यह तलाश दो चीजों में नहीं—अव्वल, जो उसको पा चुके हैं। दूसरे, जो जड़ हैं। जहाँ भी चैतन्य सत्ता Limitation संकल्प, इच्छा, शरीर की उपाधि अख्त्यार कर चुकी है वहाँ वह इससे बच नहीं सकती।

अब आपके अन्दर यह चीज स्वभाव, कुदरत या Nature की तरफ से भर दी गई है कि जिससे विवश होकर आप उस चीज को ढूँढते रहें कि जिससे आपकी जीवन की प्यास हमेशा के लिये

बुझ सके। बच्चे आँख मिचौनी में एक दूसरे को पकड़ने की कोशिश करते हैं और जब पकड़ लेते हैं तो पकड़ने वाला आराम से बैठ जाता है। व्यक्तिगत भेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार से उसी परम तत्व को पकड़ने के लिये तलाश शुरू हुई और संसार का चक्र नाना प्रकार के रूप धारण करके सामने आ गया। सब सच्चे भाव व पूर्ण पुरुषार्थ से उसको ढूँढ़ने की चिन्ता कर रहे हैं और वह कह रहा है :—

क्या मज़ा हो लो भला दौड़ो मुझे पकड़ो मुझे पकड़ो मुझ पकड़ो कोई
रिन्द मस्तों का शहनशाह हूँ मुझे पकड़ो मुझे पकड़ो मुझे पकड़ो कोई
सीना जोरी और चोरी छेड़ छाड़ अटखेलियाँ।
चुटकियाँ सीने मे भरता हूँ मुझे पकड़ो कोई ॥

जहाँ इस इच्छा को दबाने की कोशिश की और मामूली चीजों से सन्तुष्ट होना चाहा वहीं उसने आकर कहा कि यह जगह आपके प्रियतम की नहीं है। आपको उसकी तलाश में और आगे बढ़ना है। इस प्रकार अनेक ईज़ादें, अन्वेषण (Inventions) और क़िस्से कहानियाँ पैदा हो गईं। विज्ञान (Science) ने संसार का वह शृंगार किया कि इसको मोहिनी रूप बना कर सामने खड़ा कर दिया लेकिन इसका सौन्दर्य भी वह सौन्दर्य न बन सका कि जिस पर दिल का पतंगा निछावर होकर अपने आपको भूल जाता। यहाँ पहुँच कर भी तलाश समाप्त न हुई। इन सब बातों में प्यारे का प्रतिबिंब तो जरूर नजर आया लेकिन प्यारा नजर न आ सका वरना तलाश खत्म हो जाती।

पतंगे का जन्म प्रातःकाल हुआ, फिर दोपहर सामने आयी। अपने परों के सहारे इधर उधर दौड़ने लगा। ऐसा मालूम होता था कुछ ढूँढ रहा है। क्या ढूँढ रहा है खुद भी नहीं बता सकता। बेचारे की नन्हीं सी बुद्धि के पास इस बात का कोई भी उत्तर नहीं कि वह क्या ढूँढ रहा है लेकिन उसके अन्दर की जलन उसके

कहीं भी आराम से नहीं बैठने देती। वह हर चीज की तरफ़ उड़ता है इस भाव से कि शायद वहाँ उसके अन्दर की जलन का इलाज हो लेकिन वहाँ से और भी बेचैन होकर उसे उठना पड़ता है। बुद्धि उसे पागल कह रही है, उसके सामने हज़ारों किस्म की चीजें रख रही है। शायद उसका मन किसी से बहल जाय। वह बुद्धि की बातों को बड़े प्रेम से सुनता है लेकिन अपने मन की पीड़ा का इलाज कहीं नहीं देखता। वह कह रहा है "बहलता जिससे मेरा दिल कोई ऐसा न मिला" इधर बुद्धि हैरान है कि इसे किस चीज की तलाश है। वह अपनी तमाम सुन्दर चीजें इसके सामने रख चुकी लेकिन इसे सन्तुष्ट नहीं कर सकी। इधर यह ख़ुद हैरान है कि इसे किस चीज की तलाश है। सुन्दर से सुन्दर चीजें फूल, गुलदस्ते, तस्वीरें और अनेक प्रकार की वस्तुओं से गोल कमरा सुशोभित हो रहा है लेकिन यह है कि एक से उड़कर दूसरे पर जाता है और दूसरे से तीसरे पर लेकिन दिल की जलन उतनी का उतनी ही रहती है।

हर कसे अज़ ज़न्न ख़ुद शुद यारे मन।
अज दरूने मन न जुस्त असरारे मन॥

अर्थात् हर शख्स मुझसे अपने ही ख्याल से मित्र बना लेकिन मेरे अन्दर की पीड़ा को समझ कर उसका इलाज किसी ने न किया। सांसारिक तरक्की या विज्ञान का धन्यवाद कि जिसने मेरा दिल बहलाने के लिये इतनी कठिनाइयाँ सहन करके सुन्दर से सुन्दर पदार्थ मेरे सामने रखे लेकिन न मालूम मुझे क्या हो गया है, जो मुझे यह कहना ही पड़ता है कि "बहलता जिससे मेरा दिल कोई ऐसा न मिला"। मुझे अपने से शिकायत है कि जो ऐसी मिट्टी से बना है कि जिसकी बीमारी का इलाज कहीं नहीं।

इस दौड़ धूप में दोपहर के बाद शाम का समय आगया। चीजें अँधेरे के स्याह परदे में छिपने लगीं या पतंगे की परेशानी इस हद तक बढ़ गई कि बाकी चीजें नजर आना बन्द हो गई। इसं

। प्रियतम से मिलने के वक़्त की समीपता कहिये।
शानो ने पतंगे की पीड़ा या प्रेमाग्नि को कुछ इस तरह
[illegible] कि शाम की स्याही में रोशनी की ज़रूरत महसूस होने लगी या यूं कहिये कि पतंगे को प्रेमाग्नि के शोले भड़क कर बाहर निकलने की तैयारियाँ करने लगे।

मेरे गुरू देव श्री भगवान् बाबाजी महाराज अक्सर यह शेर फ़रमाया करते थे।

गुम रही ख़ुद मंज़िले मक़सूद की है रहनुमा।
ख़िज्र मिल जाते हैं जिनको रास्ता मिलता नहीं॥

अर्थात् जिस समय मनुष्य रास्ता की तलाश में रास्ता खो बैठता है और उसे पता लग जाता है कि अब वह रास्ता की तलाश में न तो ख़ुद ही रहबरी कर सकता है और न ही राह चलते उसे रास्ता दिखा सकते हैं तो उसकी हालत ऐसी हो जाती है कि न तो आगे क़दम उठा सकता है और न ही क़दम बढ़ाने की आदत छोड़ सकता है। यह रास्ते का गुम हो जाना और उसका अनुभव और दुःख ही एक ऐसे आकर्षण की शक्ल धारण कर लेता है कि जिससे रास्ता दिखाने वाला ख़ुद ही सामने आ जाता है।

सरमद अगरश वफ़ास्त ख़ुद मी आयद।
गर आमदनश रवास्त ख़ुद मी आयद॥
बेहूदा चिरा दर पैऊ मी गरदी।
बिनशीं अगर ऊ ख़ुदा अस्त ख़ुद मी आयद॥

अर्थात् अगर उसे हमारा ख़ुद कुछ भी ख़याल है तो वह अवश्य आवेगा। अगर उसका आना प्रेम के नियमों के अन्दर है तो वह अवश्य आवेगा। बग़ैर रास्ता जाने पूछे तू उसके पीछे दौड़ रहा है। रास्ता न पा सकने के विचार को दिल में लेकर किसी की ओर झाँकता हुआ बैठ जा क्योंकि अगर वह ख़ुदा अर्थात् ख़ुद आ

है तो अवश्य आवेगा। केवल अपनी बेबसी का एहसास और किसी की ओर झाँकना यही इस रास्ते का एक बड़ा भेद है।

शाम की तारीकी में पतंगे की आँखें अपने भीतरी प्रकाश से अँधकार को देख रही है। प्रकाश का काम या तारीफ यह है कि वह किसी चीज को दिखा सके लेकिन बाह्य प्रकाश इसलिये अधूरा है कि सब चीजों को नहीं दिखा सकता। पूर्ण प्रकाश में हर चीज नजर आनी चाहिये। बाह्य प्रकाश उन वस्तुओं को दिखाता है लेकिन अँधेरे को नहीं दिखा सकता। यह इसमें भारी अपूर्णता है। लेकिन पतंगे का आँतरिक प्रकाश प्रेमाग्नि नेत्रों के सुराखों से बाहर निकल कर अपनी किरणों से अंधकार को उसी तरह प्रकाशित कर रहा है कि जिस तरह वह दिनभर प्रकाश को प्रकाशित करता रहा। यह प्रेमाग्नि सिर्फ यहीं तक न रुकी बल्कि इधर-उधर खोज करके अपने शरीरों को चारों तरफ फैला दिया। इतने में अँधेरा और बढ़ा अर्थात् रोशनी की आवश्यकता प्रतीत हुई और सामने दीपक जलता हुआ नजर आया। बस फिर क्या था।

दीदए दिल हुआ जो वा खुब गया हुस्ने दिलरुवा,
यार खड़ा हो सामने आँख न फिर लड़ाए क्यों ?

पतंगे की नजरें दीपक के प्रकाश से लिपट गयीं। पतंगे के दिल की जलन का इलाज मिल गया। यह पहिचान (Recognition) बुद्धि की सलाह के बगैर ही हो गई। बुद्धि अभी कोई चीज पेश करने को ही थी जिससे परवाने का दिल बहलता लेकिन पतंगे ने पहिले ही ललकार कर आवाज दी—आप ज्यादा कष्ट न करें, मेरा प्रियतम मुझसे मिल गया। मेरी आँखों ने उसे पहिचान लिया। मेरे दिल ने इस पहिचान की दाद दी। मैं इसके लिये था और केवल इसके लिये और यह मेरे लिये था और सिर्फ मेरे लिये। "बस एक निगाह पर ठहरा है फैसला दिल का"!

परवाने की नजरें जब शमा के शोलों से मिलकर उसके प्रेम का सन्देश लाईं तो पतंगे की प्रेमाग्नि दीपक के सौंदर्य (अग्नि)—की तरफ दौड़ी और आग-आग से मिलना चाहा। पतङ्गा उड़ा जो कि केवल एक तलाश था और कुछ नहीं और उसने अपना आप दीपक मे डाल कर समाप्त कर दिया। दूसरे शब्दों में पतगे का शरीर नहीं जला वलिक वह तलाश कि जिसने पतंगे का शरीर धारण किया था खत्म हो गई। इस तरह ध्याता ध्येय से मिल गया। प्रेमी प्रियतम से एक हो गया। जब प्रेमी न रहा प्रियतम भी न रहा। जब ये दोनों गये प्रेम भी गुम हो गया। फिर जो अवस्था वाकी रही वह वह रही कि जहाँ मन वाणी को गुञ्जाइश नहीं।

"यतो वाचो न वर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"।

खबरे तहय्युरे इश्क़ सुन, न जुनू रहा न परी रही।
न तो तू रहा न तो मैं रहा जो रही सो बेखबरी रही॥
शहे बे.खुदी ने अता किया मुझे जब लिबासे वरहनगी।
न खिरद की वखिया गरी रही न जुनू की पर्दा दरी रही॥
वह जो होशो अक़लो हवास थे तेरी यूं निगाह ने उड़ा दिये।
कि शरावे सद क़दे आरजू .खुमे दिल मे थी सा भरी रही॥

प्रेम की हैरानी, विचित्रता देख कि जिसके अंतिम अवस्था में प्रियतम प्रेमी दोनों ही गुम हो गए। जहाँ बुद्धि की बुद्धिमत्ता और प्रेम का पागलपन भी जाते रहे। जिस समय प्रियतम के सौंदर्य की अन्तिम किरण ने मेरी तरफ झाँका तो मेरा तन बदन सब फूक डाला, अर्थात् अन्नमय, प्राणमय आदि कोपों को भस्म कर डाला। अब मुझे नंगेपन का ऐसा लिबास दे दिया कि जिस पर न तो बुद्धि के टाँके अपनी सिलाई कर सकें, न प्रेम की दिवानगी उसे फाड़ सके।

उस प्रियतम की दृष्टि ने कुछ ऐसा जादू का असर किया जिससे मेरे होशो हवास गुम हो गए। जो सांसारिक इच्छाओं की दुनिया

मेरे अन्दर क़ायम हो चुकी थी वह इस तरह पड़ी रही कि जिसकी तरफ फिर झाँकने का मौक़ा ही नहीं मिला।

पतंगा दिन भर किसी वस्तु पर शान्त इसलिए न बैठ सका कि वह वस्तु उसकी न थी और वह उनके लिए न था। उसके दिल की तलाश किसी और वस्तु के लिए थी और जब इसे मिल गई वह संतुष्ट होगया। इसी प्रकार मन में आग किसी चीज के लिए लगी हुई है। मनुष्य को पता हो या न हो कि उसे क्या चाहिए लेकिन उसकी बेचैनी तो सिर्फ उसी चीज से दूर होगी कि जिसको पाने की तलाश उसकी फितरत स्वभाव (Nature) में रख दी गई है। बुद्धि सायन्स, सांसारिक तरक्की का लाख धन्यवाद कि जो उसका जी बहलाने की कोशिश कर रही है लेकिन न मालूम क्या हो गया है जो यह इन चीजों को पाकर फौरन ही यह कहने लगता है कि "बहलता जिससे मेरा दिल कोई ऐसा न मिला"। सांसारिक उन्नति उसकी यह आवाज सुन कर इसके सामने ख्वाह कितने ही नये अजूबे रखती रहे लेकिन इसके मन की तृप्ति तो केवल उसी सौंदर्य से होगी जो कि इसके मन का असली साथी है। इसकी तलाश और प्राप्ति के बीच का समय ही दुनिया है।

इतना तो साबित हो ही गया कि योगी लोग जिसको योग में ढूँढ रहे हैं सांसारिक पुरुष उसी को इस संसार की उन्नति में ढूँढ रहे हैं। यहाँ तक कि हर प्राणी अपने अपने तरीकों से एक ही प्रियतम को ढूँढ रहा है। देखें कौन कामयाब होता है—

चश्मे उश्शाक़ है क्या जाने किधर देखेंगे।
दिल तो देना है गवाही कि इधर देखेंगे॥
गुलफ़ँके हैं औरों की तरफ बल्कि समर भी।
ऐ खानाबरन्दाजे चमन कुछ तो इधर भी॥

सब अपनी अपनी धुन में एक ही तरफ़ चल रहे हैं। अब देखना यह है कि किसके दिल की तड़प प्रियतम को अपने समीप कर लेती है। जहाँ हर व्यक्ति उस प्रियतम, पूर्ण सौंदर्य और अनंत को पाने की चिन्ता में अपने-अपने भाव, तरीक़े, ढंग और रास्ते बता रहा है वहाँ उस प्रियतम की प्राप्ति का एक छोटा सा मार्ग इस पुस्तक में भी लिखे जाने का विचार किया गया है—शायद ऊपर वाला शेर यहाँ काम दे सके कि—

बज़्मे उश्शाक़ है क्या जाने किधर देखेंगे।
दिल तो देता है गवाही कि इधर देखेंगे॥

जहाँगीर ने नूरजहाँ के हाथ में दो कबूतर दिये। एक कबूतर उड़ गया। जहाँगीर ने पूछा—नूरो! कबूतर कहाँ उड़ गया। उसने कहा कि जहाँगीर! उड़ गया। उसने पूछा कि वह कैसे? तो उसने दूसरे को उड़ाते हुए कहा कि जहाँगीर! ऐसे। इस बात की ज़ाहिरी शक्ल चाहे कैसी भी थी लेकिन जहाँगीर के दिल मे वह बात समा गई और नूरजहाँ मलका का रुतबा हासिल कर सकी।

उसको पाने का तरीक़ा सबसे बड़ा वही है कि जो उसको पसंद आ जाय। जिससे वह ख़ुश हो सके पति किस श्रृंगार से ख़ुश हो। इसका ज्ञान न होने पर भी स्त्री अपने श्रृंगार बदलती ही रहती है। मुबारक वह दिन कि जिस दिन का श्रृंगार उसको पसंद आ जाय! इसके आगे परमानंद की प्राप्ति और अत्यन्त दुःखों की निवृत्ति पर उन बातों को ज़ाहिर किया जायगा कि जिससे आत्म विजय का दूसरा भाग समाप्त हो सके।

बया ऐ शेख़ दर ख़ुम ख़ानए मा।
शराबे ख़ुर कि दर कौसर न बाशद॥

ऐ शेख़! हमारे शराबख़ाने में आ। वहाँ से तुझे वह शराब मिल सकेगी कि जिसका मिलना स्वर्ग (बहिश्त) में भी तेरे लिये नामुमकिन है।

आनन्द की तलाश और उसकी प्राप्ति का उपाय

१—इच्छा २—उसका रूप ३—उसकी निवृत्ति

इतना तो साबित हो ही गया कि संसार चक्र मे हर प्राणीमात्र के अन्दर एक ही इच्छा है और एक ही चीज के लिये दौड़ है। इच्छा पदार्थ का प्रमाण है और पदार्थ इच्छा का। प्यास जल का सबूत है, भूख खाने का, नेत्र प्रकाश का, कान आवाज़ का, त्वचा स्पर्श का, जिह्वा स्वाद का, घ्राणेन्द्रिय खुशबू का। इसी प्रकार परमानन्द प्राप्ति की इच्छा भगवान के स्वरूप का बड़ा भारी प्रमाण है।

हम हैं, जगत है—इतना तो निर्विवाद सिद्ध है और इसमें भी सन्देह नहीं कि हम इसमें किसी को खोज रहे हैं और यह वह चीज है कि जिसे परमानन्द आराम या शान्ति का स्रोत कहा जा सकता है।

संसार मे क्षणिक सुख का अनुभव होता है इसमें सन्देह नहीं और पूर्णानन्द की इच्छा का त्याग नहीं हो सकता इसमें भी सन्देह नहीं। कोई भगवान को माने या न माने लेकिन इतना तो मानना ही पड़ता है कि मुझे उस चीज की आवश्यकता है कि जिसे पा लेने पर सुख का अन्त न हो। इस आवाज़ को आस्तिक और नास्तिक झुठला नहीं सकते। और इस आवाज़ का जवाब संसार मे मिलता नजर नहीं आता। संसार के पदार्थ देश, काल की दौड़ मे है इसलिये सावयव है। और जो सावयव पदाथ होगा उसकी उत्पत्ति जरूर होगी और जिसकी उत्पत्ति होगी वह नाश से रहित नहीं हो सकता क्योंकि नाश उसकी वह शक्ल है जो कि बनने से पहिले मौजूद थी इसलिये नाश होने वाले पदार्थों से अविनाशी सुख को चाहना इसी तरह है कि जिस तरह बालू से तेल का निकालना या मृगतृष्णा के जल से प्यास को बुझाना।

क्या कहूँ हाले दर्द पिन्हानी वक़्त कोताह व क़िस्सा तूलानी।
ऐसे दुनिया से हो गया दिल सर्द देख कर रंगे आलमे फ़ानी॥

कुछ नहीं जुज्र तलिस्मो वहमो ख्याल।
ताजे फग़फूर तख्ते ख़ाकानी॥
लूं ना एक मुश्ते ख़ाक के बदले।
गर मिले खातमे सुलेमानी॥
बहरे हस्ती बजुज सुराब नहीं।
चश्मए ज़िन्दगी में आब नहीं॥

अर्थात् ज़गत के विनाश का हाल देखते हुए कवि का मन कुछ इस तरह घबरा जाता है कि वह संसार की भावरूपता में अभाव रूपता को देखने लग जाता है और हर आकर्षण से इस तरह दौड़ता है कि जिस तरह मृगतृष्णा के जल में जल को न देख कर मृग वापस लौटता है। जल को न पाता हुआ निराश होकर जल की तलाश में इधर-उधर भटकता है।

इतना तो ज़ाहिर ही है कि संसार के पदार्थ परिणामी है—देश, काल, वस्तु की .क़ैद से आज़ाद नहीं—इसलिये परिणामी हैं। और परिणामी पदार्थ नित्य सुख का कारण नहीं बन सकता। मैं कुर्सी पर बैठा हूँ, आप इसे खींच लीजिए, मैं ज़मीन पर आ जाऊँगा। आप उसे खींचिए, मैं जल पर आ जाऊँगा। उसको हटा दीजिए, आग पर जाऊँगा। उसके पश्चात् हवा पर, आकाश पर, फिर मन पर। उसके बाद माया पर। लेकिन मागा को हटा देने पर बाकी जो रह जायेगा इसका हटाना मुश्किल होगा क्योंकि देश, काल और मन माया के साथ ही खत्म हो जायेंगे। फिर उनके अधिष्ठान को हटाने के लिये जगह ही कौन-सी रह जायेगी? इस लिये जब तक मनुष्य देश, काल वस्तु के चक्र मे पड़ा रहता है उस समय तक दुःख के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता। और दुःख का होना ही सुख की इच्छा पैदा करना रहेगा। और क्षणिक सुख से जी इसलिये न बहलेगा कि वह क्षणिक सुख भी दुःख का ही कारण बनता रहेगा।

इन तमाम बातों का निचोड़ सिर्फ ये दो बातें निकलीं कि हमें नित्य सुख, पूर्ण आनन्द की इच्छा है और वह जगत् में है नहीं। एक तरफ से आवाज आती है कि यह इच्छा केवल भ्रम है, धोखा है और झुठलाहट है। लेकिन यह बात नियम विरुद्ध मालूम होती है क्योंकि जब संसार में बाकी इच्छाओं का इलाज मौजूद है तो फिर एक ऐसी इच्छा का जो सर्वत्र मौजूद है और जीवन, प्राण, धर्म, मोक्ष का आधार है वह बग़ैर ध्येय के अस्तित्व के कैसे हो सकती है बल्कि सच बात तो यह है कि वह है तो यह इच्छा है। अगर उसका अस्तित्व न होता तो इस इच्छा का भी अत्यंताभाव पाया जाता। अगर जल न होता प्यास न लगती। अगर प्यास लगती और जल न होता तो क्या हाल होता? फिर प्यास का ज्ञान किस चीज को बुलाता? इस प्रकार प्यास के लिए जल है और जल है तो प्यास है। उसी प्रकार मन की भूख का इलाज जो कि सांसारिक पदार्थों में नजर नहीं आता कहीं न कहीं जरूर मौजूद है।

दिल गवाह अस्त कि दर परदा दिलाराए हस्त।
हस्तिये कतरा दलीलस्त कि दरियाए हस्त॥

लोग कहते हैं कि इच्छा के बाद सामान ढूँढ़ा जाये या मिलता है लेकिन बात यह है कि सामान के बाद इच्छा होती है। अगर सामान न हो तो इच्छा पैदा ही नहीं हो सकती। और जो इच्छाएँ पैदा होकर अपने सामान को ढूँढ़ नहीं सकतीं वे इच्छाएँ दरअसल इच्छाएँ नहीं होतीं। इच्छा के पैदा होने पर अगर यह विश्वास पक्का हो जाये कि सामान के बाद यह इच्छा पैदा हुई है तो फिर इच्छा को पूर्ण करने की चिन्ता ही उड़ जाये। और जब चिन्ता ही न रहे तो बेचैनी भी साथ ही ग़ायब हो जाये। इच्छा तक तो चिन्ता इसलिये नहीं कि वह अपना सामान लेकर आई है और सामान मिलने पर चिन्ता इसलिये नहीं क्योंकि सामान मिल ही चुका है।

मेरे पास एक प्रेमी आये जो कि सांसारिक दृष्टि से बहुत बड़े आदमी थे। वे कहने लगे कि देखिये, महाराज! बावजूद इस क़दर सख़्त मौसम, बादल और बिजली की कड़क के भी मैं आपके दर्शन किये बग़ैर न रह सका और हाज़िर इसलिए हुआ कि मुझे प्रेम की भिक्षा दीजिए। मैं आज एक धनाढ्य और बड़ी हैसियत वाले के समान हाज़िर नहीं हुआ बल्कि भिक्षुक बनके आया हूँ। आपके पास प्रेम का ख़ज़ाना है, मुझे प्रेम की भिक्षा मिलना चाहिए। मैंने मुस्करा कर कहा कि आपने बड़ी हिम्मत की, और त्याग भी कि जिससे इस क़दर सख़्त मौसम का मुक़ाबला किया और अपने आप आराम की परवाह न की। यह एक नज़र से तो बहुत बड़ा त्याग है क्योंकि जिस वक़्त किसी चीज़ की कोई क़ीमत डालने वाला न हो उस वक़्त अगर उसकी कोई थोड़ी सी भी क़ीमत डाल दे तो समय के लिहाज़ से वह बहुत बड़ी चीज़ समझी जाती है। लेकिन जिस समय चाहने वाले ज़्यादा हो जायें उस समय बड़ी से बड़ी क़ीमत भी छोटी से छोटी समझी जाती है। किसी भक्त ने भगवान् से पूछा कि आपका मूल्य क्या है? आप किस क़ीमत से मिल सकते हैं? तो जवाब मिला कि दोनों जहान देकर मुझे कोई भी खरीद सकता है। इस पर भक्त को शर्म आई और उसने कहा कि हमारी हालत को देखते हुए आप इतना सस्ता न बनिये बल्कि अपनी क़ीमत और ऊँची करें चूँकि यह तो बहुत ही कम है।

क़ीमते ख़ुद गुफ़्ताई हर दो जहाँ।
निर्ख़ बाला कुन कि अरज़ानी हनोज़॥

अर्थात् तूने अपनी क़ीमत दोनों जहान बताई यानी लोक और परलोक के त्याग से तू मिल सकता है। यह सुन कर हमें शर्म आ रही है। अपनी कीमत और ऊँची कर चूँकि तू अभी बहुत सस्ता है।

इसके मार्ग में कठिनाइयाँ सहन करने के सम्बन्ध में किसी ने अपने भाव को यों प्रकट किया है जिनको प्रायः मेरे श्री गुरुदेव भगवान् बाबाजी महाराज फरमाया करते थे।

तेरा वह ग़म जिसे सौ जाँ से लें हम शाद सौ होकर।
तेरा वह दर्द जो दिल में रहे आराम जाँ होकर॥
पता मिटकर लगाया राहे दिल से कूए जानाँ का।
निशाँ पैदा किया तनहा ने बे नामो निशाँ होकर॥

जिसका मतलब यह है कि अगर हम सौ दफा जन्म लें और अपनी जिन्दगी को तुझ पर कुर्बान करते रहें जिसके जवाब में तू अपने दर्शन न दे बल्कि अपना ग़म दे दे यानी अपने दर्शन की भूख लगाये तो इस सौदे को हम सौ ख़ुशी से सौ जान देकर खरीदने को तैयार हो जायेंगे। इसके बाद तेरे ग़म, तेरे विरह को हम इस तरह नहीं रखेंगे कि जिसके मुतल्लिक़ जुदाई का ख्याल पैदा किया जा सके बल्कि इस दर्द को, इस ग़म को, इस बिछोह को, और इसकी पीड़ा को अपने जीवन का असली आराम समझकर साथ रखेंगे। आखिर यह विरह की अग्नि हमें जलाकर खाक कर डालेगी या जब तेरी धुन में अपना आप भूल जायगा तो तेरी गली का पता हमको लग जायगा यानी हम बेनामो निशां हो जायेंगे तो तेरा निशान हमको मिल जायगा। इसके लिये तो इतने बड़े त्याग को भी बहुत कम समझा गया है फिर सख्त मौसम के मुकाबिले का जिक्र तो इसके सामने बेमानी है लेकिन उन लोगों की अपेक्षा बहुत बड़ा है जो इसके लिए अपनी जिंदगी के फालतू लमहों को भी खर्च करना नहीं चाहते।

बच्चों का नहीं खेल यह मैदाने मुहब्बत।
आये जो यहाँ सर से कफ़न बाँध कर आये॥

"जे तो प्रेम खेडन दा चाव—सिर धर तली गली मोरी आव"

अब जो आपने यह कहा कि मैं इस दरबार में भिक्षुक बन कर आया हूँ, बड़ा बनकर नहीं। कितनी अच्छी बात है—क्योंकि जो उसके सामने बड़ा बनता है वह उसकी बड़ाई को नहीं समझता। और जो छोटा बनता है वह बड़ा कर दिया जाता है। और भिक्षुक का शब्द इसलिये प्रिय है कि उसे कोई खरीद नहीं सकता। और न खरीद सकने का ख्याल ही दीनता (आजिज़ी) है और इज्ज़ कामयाबी का राज़ है।

अब रहा प्रश्न यह कि आप प्रेम की भिक्षा लेने आये हैं। इस सम्बन्ध में मैं एक बात पूछना चाहता हूँ कि जब आप किसी को चाय वगैरह पर बुलाते हैं उसका क्या तरीक़ा होता है? सिर्फ यही कि कार्ड भेज देते हैं कि आप फ़लां तारीख़ को इतने बजे हमारे यहाँ आकर चाय पीजिये और जिसको कार्ड मिलता है वह समझ लेता है कि उसको फ़लाँ दिन इतने बजे आपके घर चाय मिलेगी। चाय कौन पिलाता है जो कि कार्ड भेजता है। इसी प्रकार ईश्वर से मिलने की इच्छा जीव के मन में ईश्वरीय दया का बुलावा या निमन्त्रण होता है। जीव के अन्दर तो ईश्वर से मिलने की इच्छा पैदा ही नहीं हो सकती—विजातीय विजातीय की ओर कभी नहीं जाता। जब जीव के मन में ईश्वरीय कृपा का प्रकाश होता है तब उसके अन्दर ईश्वर से मिलने की इच्छा पैदा होती है और जब यह इच्छा पैदा होती है तो महात्माओं की नज़र में यह ईश्वर की तरफ़ से दर्शन देने के लिये इस इच्छा को एक क़िस्म का कार्ड समझा जाता है। दर्शन कौन देता है?—जो कि दर्शनों की इच्छा पैदा करता है। तो मैंने कहा कि इस ख्याल को सामने रखते हुए अगर आपके अन्दर ईश्वर दर्शन या प्रेम प्राप्ति की इच्छा पैदा हो चुकी है तो यह ईश्वर की ही तरफ़ से एक क़िस्म का निमन्त्रण-पत्र है। वरना जिसने कार्ड भेजा है या इच्छा पैदा की है दर्शन भी जरूर देगा और अगर अभी

कार्ड ही नहीं पहुँचा तो मजबूरी है। समय का इन्तज़ार कीजिये कि जब आपके अन्दर सच्ची इच्छा पैदा हो जाय। अर्थात् यहाँ भी इच्छा से पहिले सामान मौजूद है।

जब हम दुनियाँ में आते हैं हमारी क़ुदरती ज़रूरियात का इलाज पहिले ही मौजूद होता है। प्यास लगने पर पानी नहीं बनता बल्कि पानी होता है तो प्यास लगती है। अगर प्रकृति (Nature) को अच्छी तरह देखाभाला जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हर ज़रूरत से पहिले उसका सामान मौजूद है और जिस ज़रूरत का सामान ही नहीं वह ज़रूरत ही नहीं।

एक महाराजा मुझसे पूछने लगे कि अशान्ति कैसे दूर हो। यानी फ़िक्र कैसे मिट सके? तो मैंने कहा फ़िक्र दो हालतों में नहीं होनी चाहिये—अव्वल जब कि ज़रूरत को पूरा करने के सामान अपने हाथ में हैं। और दूसरे जब कि ज़रूरत का पूर्ण करने के सामान अपने हाथ में नहीं। जब एक हालत को हम ठीक कर सकते हैं तो उसके लिये हम फ़िक्र क्यों करें। और जिस हालत को ठीक नहीं कर सकते उसके लिये भी फ़िक्र निरर्थक है। अगर किसी को पता लग जाय कि मेरी ज़रूरत सामान के बाद पैदा हुई है तो वह उस ज़रूरत से परेशान कभी न होगा बल्कि उसका दिल हर तरह क़ायम रहेगा।

एक प्रेमी की मेरे पास चिट्ठी आई जिसमें उन्होंने लिखा था कि मुझे नौकरी में पहिली तनख्वाह मिली जिसमें से मैं आपकी भी सेवा करना चाहता हूँ। आप लिखिये कि वहाँ किस चीज की ज़रूरत है ताकि उसे मैं भिजवा दूं। मैंने कहा—आपके इस प्रेम का धन्यवाद। लेकिन आप ने जो ज़रूरत के सम्बन्ध में पूछा है उसका जवाब यह है कि मुझे जिन चीज़ों की ज़रूरत है वह सब हैं और जो है नहीं उनकी मुझे ज़रूरत नहीं।

जब हालत अपने किये दुरुस्त न हो सके और उसकी दुरुस्ती के बग़ैर चैन भी न आये तो उस वक़्त चारोनाचार मनुष्य को किसी

और शक्ति की तरफ हाथ बढ़ाना पड़ता है जैसे कि किसी प्यासे को जल न मिलने पर उसके दिल की यह भावना होती है कि कोई हो और जल पिलाए। उसी प्रकार मनुष्य जब किसी मामले में बेबस हो जाता है तो उसकी बेबसी ही किसी ऐसे शख्स को अन्दर से चाहती है कि जो आकर उसको उस हालत से बचा सके। यह भाव मनुष्य के अन्दर ऐसी बात पैदा कर देता है कि जिससे उसको किसी और हस्ती का यक़ीन होने लगता है।

आप कमरे के बाहर खड़े हो और अन्दर किसी को आवाज देकर यह कहते हैं कि हमें फलाँ फलाँ चीज भेज दो, उसके जवाब मे वह चीजें आती भी रहें तो आपको ज़रूर यकीन हो जायगा कि क्या हुआ मैं उसको देख नहीं सका कि जो अन्दर से मेरी माँग के मुताबिक सब चीजों को भेज रहा है लेकिन कोई है जरूर जो मेरी बातों का जवाब दे रहा है। वर्ना खाली कमरा इन तमाम चीजों को मेरे सवाल के जवाब में कैसे भेज सकता। अब अगर किसी बात के जवाब में खामोशी भी रहे और अन्दर से सवाल के मुताबिक़ जवाब न आए तो एक मात्र यह फैसला कर लेना कि अन्दर कोई नहीं है एक मुश्किल बात है, क्योंकि जब वह उसके बाद और बातों का जवाब देने लग जाता है तो फिर उसके न होने का ख्याल भी झूठ हो जाता है—अगर वह किसी मामले में ना भी कर भेजता है तो वह ना भी उसके होने का ही सबूत है। अपनी बेबसी दुनिया में क़दम क़दम पर उसकी जरूरत महसूस कराती है और यह ज़रूरत जानते या न जानते हुए किसी वस्तु की कल्पना कर प्रार्थना की शक्ल अख्त्यार कर लेती है और यहाँ से ईश्वर के अस्तित्व का प्रकाश होने लगता है। जब प्रार्थनाओं का जवाब मिलने लगता है तो ईश्वर का काल्पनिक स्वरूप निश्चयात्मक होता जाता है और उसके बाद अगर किसी मामले में खामोशी भी रहे, प्रार्थनाओं की सुनाई न हो तो मनुष्य को उसके न होने या संगदिल होने का जिक्र करना

इसलिये मुनासिब नहीं कि जो अब तक तमाम बातों का जवाब देता आया है उसकी खामोशी नामेहरबानी या न होना नहीं समझा जा सकता बल्कि यह कि जिस वक़्त प्रार्थनाओं के जवाब में वह खामोश है उस वक़्त खामोशी ही की जरूरत है और हमारे लिये वही मुफ़ीद है क्योंकि ऐसा मेहरबान नामेहरबान कभी नहीं हो सकता। उसको हर बात में कोई बात जरूर होती है।

ग़ुस्सा तेरा दवा है रहमत तेरी गिज़ा है।
शानें हैं तेरे जितनी जाने जहांनियां है॥

इस संसार के एक एक परमाणु को देखते हुए उसके बनाने वाले का ध्यान आने लगता है। हर चीज कुछ इस शक्ल और तरकीब में ढली हुई है कि उसकी बनावट दिल में यह भाव पैदा किये बग़ैर नहीं रह सकती कि किसी बड़े ही कारीगर का यह बनाया हुआ खेल है। आप कमरे में बैठे हैं आपके एक तरफ़ कुर्सियां पड़ी हुई हैं, दूसरी तरफ़ मेज है, एक तरफ टेबिल पर तस्वीरें सजी हुई हैं, एक तरफ़ फूलदान लटक रहा है लेकिन कमरे में कोई मौजूद नहीं। मगर कमरे को देखते ही यह ख्याल पैदा हुआ कि किसी ने बड़ी चतुराई के साथ इसको सजाया, मेहमानों के बैठने के लिये इन चीजों को यह सुंदर तरतीब दी है वर्ना कुर्सी और मेज़ों में ख़ुद यह ताक़त कहां थी कि ऐसी शक्ल में आकर अपने आपको रखतीं जिनके रखने में एक खास मक़सद (purpose) या भाव पाया जाता। जड़ में संकल्प का अभाव है, ज्ञान शक्ति नहीं इसलिये उसमें किसी योजना (scheme) या भाव की आशा करना बुद्धि के विरुद्ध बात है। जड़ उसको कहते हैं कि जो न तो अपने को जान सके और न किसी को जान सके और संकल्प और ज्ञान शक्ति के अभाव के कारण किसी चीज को तरतीब न दे सके।

संसार को देखने से ऐसी बाक़ायदगी का अनुभव होता है कि जिससे फ़ौरन यह बात समझ में आजाय कि यह जगत जड़ प्रकृति का बनाया हुआ खेल नहीं है बल्कि किसी ऐसे चित्रकार की बनाई हुई तस्वीर है कि जिसके एक-एक हिस्से में होश, दानाई, ज्ञान की दुनिया पाई जाती है। ज़रा मनुष्य के शरीर की बनावट देखिये कि हरबात किस अन्दाज़ से बनाई गई है कि हर चीज़ अपनी जगह पर यही कह रही है कि मैं अपनी ठीक जगह पर मौजूद हूँ। फिर अगर आपके हाथ पर खुजली हो या मच्छर काट जाय तो आपके दूसरे हाथ को वहाँ तक पहुँचना मुश्किल नहीं होता क्योंकि दोनों मे चेतन सत्ता केवल एक है। लेकिन अगर किसी दूसरे शख़्स को अपना हाथ वहाँ पहुँचाना पड़े तो उसे वहाँ तक पहुँचने मे काफी वक़्त लग जायगा। इसी प्रकार शरीर और संसार की बनावट में ऐसा पता चलता है कि एक ही चैतन्य दोनो मे कार्य कर रहा है। यह किसी पूर्ण ज्ञान शक्ति का ये दोनों चीज़ें पसारा है। इधर आँख है, उधर सूरज है, इधर कान हैं, बाहर आवाज़ है, इत्यादि। बच्चा जब जन्म लेता है तो उस समय उसके लिये दो दूध की नहरें पैदा हो जाती हैं। बच्चे को उस समय कुछ नहीं आता लेकिन माँ की गोद में बैठकर दूध पीना आता है। इधर बच्चे के दाँत निकलते हैं उधर दूध ख़ुश्क होने लगता है। समय पर सूर्य चढ़ता है, और अस्त होता है। गोया संसार की एक एक बात किसी नियम, उसूल में बँधी हुई है और यह नियम जड़ क्रियाओं का नतीजा नहीं बल्कि किसी ज्ञान-शक्ति का खेल है।

और जो बातें दुनिया में इस क़िस्म की नज़र आती हैं कि जिन्हें ख़ौफ़नाक, दिल हिलाने वाली कहा जा सकता है वह दर असल बेतरतीब नहीं है। वह या तो तरतीब की शान बढ़ाने के लिए हैं और या इन्सानी अक़्ल की कमज़ोरी उनको न समझकर बेतरतीब कह बैठती है। अगर आप एक परदे के छोटे से सुराख़ में से दूसरे कमरे

में झाँके तो हो सकता है कि आप एक महजबीं, .खूबसूरत तथा सौंदर्य की मूर्ति के चेहरा के सिर्फ स्याह तिल को ही देख सकें और उसकी स्याही से उसके सारे चेहरे का अन्दाजा कर बैठें कि उसका बाकी चेहरा भी इसी तरह काला होगा। लेकिन जो परदे के अन्दर उस कमरे में दाखिल हो चुका है वह स्याह तिल को देखता हुआ भी उसकी बाकी .खूबसूरती को भी देख रहा है और कह रहा है कि इस तिल से चेहरे की .खूबी बढ़ रही है और चेहरे से तिल की। गोया जिसको परदे की आड़ में बदनुमाई समझा जा रहा था वह परदे के बग़ैर .खूबसूरती की जान बन रही थी। इसी प्रकार मनुष्य जब अपने क्षुद्र बुद्धि (या नारसा अक़्ल या Unreasonable Reason) की पैरवी करता है और उससे उस ज्ञान के अनंत समुद्र के नक़्शों को जानना चाहता है तो उसकी सब बातों को न समझता हुआ उसकी किसी एक ही बात को पकड़ कर उस .खूबसूरत चेहरे के स्याह तिल की तरह उसके सौंदर्य को कुरूपता की शक्ल दे बैठता है और उसकी योजनाओं में अक़्सर ग़लतियाँ निकाल बैठता है। यह नहीं समझता कि जहाँ माँ बच्चा को अच्छी अच्छी स्वादिष्ट मिठाइयाँ खाने को देती है तो कभी जरूरत पड़ने पर उसे कुनीन, अजवाइन वग़ैरह भी देनी पड़ती है और कभी बच्चों के पाँव का काँटा निकालने के लिए उसी पाँव में उसे सुई भी चुभोनी पड़ती है। कभी माँ बच्चे को पुचकारती है और कभी मारने को भी दौड़ती है। एक तो ऐसे का गोरखधंधा उस वक्त तक खोलना मुश्किल हो जाता है कि जब तक गोरखधंधे का बनाने वाला ही उसे .खुद न समझा दे। और उसमें कई चीजें बेकार इधर-उधर लटकी नजर आती हैं लेकिन जब गोरखधंधे की पूरी शक़्ल, तरतीब, बनावट समझ में आ जाती है तो उसमें फालतू नजर आने वाली चीज भी फालतू नहीं रहती। उसकी हर चीज जो कि पहिले बेतरतीब नजर आती थी फिर तरतीब के अन्दर नजर आने लगती है।

इतना तो ज़ाहिर है कि दुनिया .खुद नहीं बन गई। इसका बनाने वाला ज़रूर कोई है। ख्वाह उस बनाने वाले का नाम रूप कोई दिया जाय। जड़ के संकल्प का नतीजा तो कोई बात हो ही नहीं सकती और जड़ को अन्धाधुन्ध हरकत न तो किसी भाव को लेकर हो सकती है और न किसी तरतीब को ज़ाहिर कर सकती है। अगर जड़ के अवयव मिलने पर किसी चैतन्य का प्रकाश माना जाय तो उन अवयवों को खास तौर पर जोड़ने के लिए उससे पहिले चैतन्य की आवश्यकता महसूस होती है। प्रश्न सिर्फ़ इतना रह जाता है कि सृष्टि की तरतीब से पहले ज्ञान-शक्ति मौजूद थी या तरतीब देने के बाद ज्ञान और चैतन्य सत्ता का प्रकाश हुआ। अगर हम यह कहें कि ज्ञान शक्ति पहिले मौजूद थी तो प्रश्न हल हो गया और जगत की व्यवस्था (तरतीब) के बाद उसको मानते हैं तो फिर इस बात का जवाब क्या होगा कि उस तरतीब को देने वाली या व्यवस्था क़ायम करने वाली कौनसी ज्ञान शक्ति थी। वह जड़ तो हो नहीं सकती क्योंकि जड़ में तरतीब देने की शक्ति नहीं इसलिए वह ज्ञान शक्ति ही हो सकती है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि वह ज्ञान शक्ति जो चैतन्य सत्ता है जो जगत से पहिले माननी ही पड़ती है वह परिच्छिन्न थी या अपरिच्छिन्न (महदूद या लामहदूद, Limited or Unlimited) अगर उसे परिच्छिन्न (Limited) मानें तो .खुद एक सावयव वस्तु होती हुई अपने अस्तित्व को क़ायम रखने के लिये किसी दूसरे कारण को ढूंढेगी और इस तरह वह खुद नाशवान् होती हुई एक ऐसे जगत की उत्पत्ति में कामयाब नहीं हो सकती। और फिर जब उसको जगत की उत्पत्ति के पहले माना और सबका आदि मूल कारण माना तो वह .खुद ही निरवयव और देश काल से बाहर हो गई। जो चीज़ देश काल से बाहर होगी वह निश्चय ही अपरिच्छिन्न और लामहदूद होगी। इसलिए इसका ज्ञान भी लामहदूद होगा। अब प्रश्न यह रह जाता है कि वह चैतन्य भी है, पूर्ण ज्ञान-स्वरूप भी

है चूँकि उस असीमित ज्ञान स्वरूप का प्रमाण यह जगत, उसको तरतीब और हमारी छोटी सी बुद्धि है। जिस सीमित बुद्धि के कारनामों को देखता हुआ मनुष्य आश्चर्यवत् हो जाता है फिर जिस ज्ञान के समुद्र में यह बुद्धि एक नन्ही सी बूँद भी नहीं वह कुछ कितना बड़ा होगा। जिसकी बनाई हुई एक बात को समझना बुद्धि के लिये असम्भव हो जाता है फिर उसके ज्ञान का वारापार लगाना इस बुद्धि के लिए कितना कठिन होगा। फिर जब उसके ज्ञान को limitation में लाने वाली हमारी बुद्धि की दौड़ से वह ज्ञान शक्ति ऊपर हो गयी तो उसका unlimited हो जाना उसी समय निश्चित हो जाता है। जब आँख ने आकाश की तरफ झाँका, उसका एक टुकड़ा काट कर रह गयी तो अपनी नज़र की पहुँच से कुछ आगे देख कर यह निश्चय कर लिया कि आकाश लामहदूद है। जब मेंढक ने समुद्र में कूद कर समुद्र की लम्बाई चौड़ाई को नापना चाहा तो थोड़ी ही देर में थक कर अपने सामने उतना ही पानी देख कर यह निश्चय कर लिया कि समुद्र का जल लाइन्तहा और असीमित है। इसलिए उसका ज्ञान अनन्त है. उसका अस्तित्व अनन्त है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि उसके अन्दर कोई और भी गुण है या नहीं कि जिसकी वजह से मनुष्य उसको जानने की इच्छा करें। इसका जवाब यह है कि जब वह अनन्त है, देश काल वस्तु से बाहर है तो वह हर तरह भय से मुक्त है क्योंकि बनना और बिगड़ना दोनों ही बातें उसमें नहीं हो सकतीं. न तो बाहर से उसमें कुछ आ सकता है न उससे बाहर कुछ जा सकता है। जब वह भय से मुक्त है तो वह पीड़ा और दुःख से भी मुक्त है। और जब वह पूर्ण ज्ञान है तो उसको हर काल के खबर होने की वजह से हर ग़लती से भी वह परे है। जिसके अन्दर यह दो बातें हों उसके अन्दर दुःख का अत्यन्त अभाव होना आवश्यक है और तीसरे जब उसके अलावा ज्ञान स्वरूप या चैतन्य कोई है नहीं तो फिर जगत और उसकी तरतीब उसी की इच्छा का

प्रकाश हो सकता है और जब जगत उसी की इच्छा का प्रकाश है तो फिर उससे प्रतिकूल कुछ हो ही नहीं सकता। जड़ तो उसकी मुख़ालफ़त कर नहीं सकता, संकल्पाभाव और इच्छाभाव और ज्ञानाभाव के कारण। और दूसरा चैतन्य उससे बड़ा है नहीं कि जो उसकी मुख़ालफ़त की हिम्मत कर सके। इसलिए जो वह चाहता है वही करता है, जो उसने चाहा वही किया, और जो वह चाहेगा वही करेगा। अव्वल तो उसके प्रतिकूल कुछ है ही नहीं और अगर किसी दृष्टि में कोई बन भी सकता है तो वह रह नहीं सकता। हिमालय पर चिउंटी नाच कर कब उसको हिला सकती है ? या चिउंटी के धमाके से हिमालय कब भयभीत हो सकता है ? इस लिए वह "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" है। वह सत्य है, ज्ञानस्वरूप है और अनन्त है। जिसके अन्दर ये सब बातें हों वहाँ दुःख, ग़म, फ़िक्र को जगह ही कहाँ है ? "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत्"। जब वह अपनी इच्छा का विरोध कहीं पाता ही नहीं तो दुःख उसमें नहीं रह सकता। जब उसको अपनी सत्ता के नाश का भय नहीं तो दुःख उसमे आ नहीं सकता। और जब उसका ज्ञान सीमित और अन्धकार में लिपटा हुआ नहीं तो वह त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हुआ इसलिए वह ग़लती से मुक्त है। जब भूल उसमें नहीं तो उसका परिणाम दुःख भी उसमें रह नहीं सकता। इसलिए वह दुःख से मुक्त है तो स्वभावतः ही आनन्दस्वरूप हुआ। वह कह रहा है :—

न मुझे किसी का ख्याल है, न ज़रा भी ख़ौफ़े ज़वाल है।
जिसे होवे असरे ज़वाल न, मेरा वह कमाले कमाल है॥

अर्थात् मुझे किसी का यह ख्याल नहीं कि मेरी कहीं मुख़ालफ़त हो सकती है और न किसी की मुख़ालफ़त से मेरे कोई कमी आने का भय है यानी जिस पर ज़वाल, नाश, गिरना, घटना अपना असर न कर सके मेरा वह ऐश्वर्य, वह तरक़्क़ी, वह अरूज, वह कमाल है। मेरा कमाल Challenge देता हुआ, गर्जता हुआ कहता

है कि Come all अर्थात् सब आओ (अगर कोई हो तो, और मेरी मुखालफ़त करके देखो कि कहाँ तक कामयाब हो सकते हो—अव्वल तो मेरे साथ कोई है ही नहीं जो मुखालफत करे और अगर कोई है तो मुझसे बड़ा कोई नहीं जो मेरी मुखालफत करे और मेरा कमाल यह है कि जिसमें भय नाम को भी नहीं।

मेरा रंग पर्दाए मौज में न छुपा छुपाये से भी कभी
मैं सरापा हस्तिए आब हूँ न फिराक है न विसाल है

अर्थात दुनिया की हस्ती मेरी हस्ती को छुपा नहीं सकती—एक तो इसलिये कि वह छोटी है। छोटी चीज बड़ी चीज को छुपा नहीं सकती। दूसरे इसलिये कि उनका होना मेरे होने की दलील (प्रमाण) बन रहा है। तस्वीर मुसव्वर को दिखा रही है। आईने में मुँह नजर आ रहा है। दुनिया एक ऐसी तस्वीर है कि जिसकी हर बनावट मुसव्वर की चित्रकारियों को पुकार पुकार कर दिखा रही है। यह एक ऐसा आईना है कि जिसमें झाँकते ही देखने वाले को अपना नहीं बल्कि मेरा मुँह नजर आने लगता है। चलते चलते एक तो आईने को देखना है और एक आईने में देख कर मुझको देखना है लेकिन जब सरसरी नजर से देखने वाला इस आईने की तरफ लपक कर देखता है कि इसमें क्या है तो उसमें झट मेरी सूरत नजर आने लगती है।

सवाल—आईने में तो अपना मुँह नजर आता है, दूसरे का नहीं।

जवाब—यही तो बात है। जो आईने में झाँकता है वह अपने मुँह में भी सिवाय मेरे मुँह के और कुछ देख नहीं सकता। उसका चेहरा, उसकी तरतीब, उसके चेहरे के आईने में मेरी शक्ल दिखाने लगती है।

ले आईना को हाथ में और बार बार देख
सूरत में अपनी सूरते परवरदिगार देख

बारीक नजर से तो मेरी हस्ती हस्तिए आलम में ज़ाहिर हो रही है। लहर में, लहर की हस्ती में सिवाय पानी के और कुछ नहीं। जो जाहिर हो रहा है, वह पानी है न कि लहर। पानी से लहर ज़ाहिर है न कि लहर से पानी। देखने वाला एक मुद्दत तक पानी को भूल कर लहर को देखता रहे लेकिन देख वह रहा है सिर्फ पानी को ही। इसलिए लहर पुकार पुकार कर कह रही है कि पानी की मौज, उसकी हरकत, उसका एक शक्ल में बंधने का नाम लहर है जो उससे अलहदा अपनी हस्ती को मुक़र्रर कर ही नहीं सकती। मैं पानी थी, अब पानी पर हूँ और उसी पानी मे फिर छिप जाऊँगी।

अगर कोई यह पूछे कि लहर का नामरूप पहिले पानी मे था कि नहीं और अगर था तो उससे एक हो कर था या दो हो कर तो उसका जवाब यह है कि यह कहना बहुत मुश्किल है कि वह उसमे था या नहीं—अगर था तो एक था या अलहदा ? क्योंकि जिस हालत में हम उसके होने का ख्याल कर रहे हैं उस हालत में यह सवाल इसलिये खत्म हो जाता है कि अनंत के विचारों मे शान्त की भावनाएँ उठ नहीं सकतीं क्योंकि एक समय मे एक ही तरफ देखा जा सकता है। जब आप अनन्त की भावना करके शान्त को ढूंढ़ना शुरू करेंगे तो दोनों चीजें Contradictory अथवा विरोधी हो जाएँगी। और अगर शान्त का विचार करके अनन्त को ढूँढ़ेंगे तो वह मिल ही न सकेगा। इसलिये था या नहीं—एक था या दो—इन प्रश्नों को छोड़ते हुए यही कहना पड़ता है कि अगर न होता तो आता कहाँ से—अगर दो होता तो एक न हो सकता। इसलिये जो कुछ था, वह उससे भिन्न होकर तो था ही नहीं। इसलिए उसकी एकता एकता को भी उड़ा देती है और जब नजर आया तब भी अलहदा होकर नहीं। इसलिये लहर के नाम रूप का अस्तित्व जल मे अनन्त

काल से रहता हुआ भी जल की एकता में बाधक इसलिये नहीं हो सकता क्योंकि उसका अपना अस्तित्व या तो शून्य है और या जल से एक है। इसलिये लहर का पर्दा पानी को छुपा नहीं सकता। सृष्टि का होना सृष्टि वाले को ढाँक नहीं सकता बल्कि उलटा ज़ाहिर ही करता है। दुनिया में पर्दा और पर्दा वाले दो होते हैं लेकिन उसकी हस्ती खुद परदा और परदा वाला है। लहर ने पानी को छुपाया, पानी लहर में छुपा, इन तमाम बातों का मतलब यह है कि पानी ने पानी को छुपाया और पानी ख़ुद पानी के परदे में छिपा। वह हस्ती पुकार-पुकार कर कह रही है कि—

> मज़ा हस्ती का लेता हूँ गुलो बुलबुल जुदा बन कर,
> ज़हूरे सूरते बाक़ी को मैं आया फ़ना बन कर,

अर्थात् मैंने होने का आनन्द लेने के लिये फूल और बुलबुल को जुदा बना दिया और इस प्रेम और सौन्दर्य का आनन्द लिया और शून्य और शान्त बन के नत्ता और अनन्त को ज़ाहिर किया वर्ना मैं अपने होने में कैसा होना हूँ कि जिसमें होने और न होने की कल्पना ही नहीं उठ सकती। जब मैं अकेला होता हूँ तो सब कुछ मेरे अन्दर होता है और जो कुछ मेरे अन्दर होता है वह मुझ से अलहदा बन कर नहीं बल्कि मेरे संकल्प का चमत्कार बन कर और जब मैं सब में होता हूँ तो उस समय मैं अपनी अनन्त शक्ति को बाहर प्रकट करता हूँ। गवैया जब तक नहीं गाता तब तक गाना उसके अंदर होता है और जब गाता है तो उसके बाहर। बहरसूरत स्वरों का सम्बन्ध गवैये से है और गवैये के बग़ैर कुछ भी नहीं। संसार मुझे जितना भी छिपाने की कोशिश करे छिपा नहीं सकता। उल्टा इसका इंकार ही मेरे लिए इक़रार बन जाता है। जो बुद्धि (Reason) मेरे अस्तित्व से इंकार करती है। उस बुद्धि (Reason) का तर्क और होना उसी समय मेरे होने के लिए दलील बनती जाती है जिस तरह

किसी के यह बार-बार कहने पर कि मेरे मुँह में जुबान नहीं है उसकी जुबान का सबूत मिलता है।

इन सब बातो से साबित होता है कि सृष्टि के आदि के पहिले और तरतीब से पहिले किसी सच्चिदानन्द स्वरूप शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। आम प्रश्न यह पैदा होता है कि वह सृष्टि उपादान कारण है या निमित्त कारण। चूंकि उपादान कारण में सिवाय उसके और कोई रह नहीं सकता।" खुदकूजाओ खुद-कूजागरो खुदगिलेकूजा" अर्थात् वह खुद प्याला, उसकी मट्टी और कुम्हार आप ही है निमित्त कारण में कुम्हार और घड़ेवाली बात सामने आती है। यही बातें हैं कि जिस पर जीवन का बहुत सा हिस्सा निकल जाता है और तत्व की प्राप्ति के लिए समय नहीं रहता। अगर वह खुद आप हो हैं और किसी वस्तु को बना कर सामने रखता है तो इन बातों से तत्व को जानने में काई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि अगर वह आप ही हैं तो भी उसने अपनी लीला को ऐसे रूप में बाँध दिया है कि जिससे वह अज्ञान से ज्ञान की तरफ चले। जड़ से चैतन्य की तरफ और दुःख से आनन्द की तरफ। गोया उसने अपने को ईश्वर, जीव और प्रकृति की शक्ल में बाँध दिया है और जीव के अन्दर ईश्वरत्त्व के पाने की इच्छा पंदा कर दी है और अगर जीव, प्रकृति और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं तो भी उसने जीव के अन्दर ईश्वर को पाने की इच्छा पैदा कर रखी है। जिसमें प्रकृति जड़, जीव, चैतन्य और इच्छा सहित और ईश्वर सच्चिदानन्द है। शुरू भले ही कहीं से कीजिये लेकिन आनन्द स्वरूप से मिलने की इच्छा बनी ही रहती। मैं इन प्रश्नों पर विस्तृत रूप से विचार करता लेकिन वह विचार संभव हैं कांटों को निकालते-निकालते कहीं चुभने का कारण भी बन जाता। सफर के समय यह नहीं देखा जाता कि किस-किस चीज को साथ ले जा सकते हैं बल्कि यह देखा जाता है कि किस किसको छोड़कर सफर कर सकते हैं। ईश्वर-दर्शन (God-

Realisation) की इच्छा में यह नहीं देखा जाता कि कितने और प्रश्न उसको पाने के मार्ग में रखे जा सकते हैं बल्कि यह कि किन-किन को छोड़ कर केवल आवश्यक बातों को लिया जा सकता है कि जिनके बिना इस रास्ता पर चलना मुश्किल है। हमारे लिये इतना ही जानना काफी है कि हम हैं, दुनिया है और दुनिया को बनाने वाला। और हम दुःख से पीड़ित होकर सुख की तलाश में हैं और सुख का सम्बन्ध केवल उस अनन्त से एक होने पर हो सकता है। यह साधारण सी बातें वह हैं कि जिनको हर मत और साधारण दृष्टि वाला भी सामने देख सकता है। सूरज कहाँ से आया, कब बना, उसमें प्रकाश डालने वाला कौन था, कहाँ था, कब बना, इन बातों को जानने के बजाय उसके प्रकाश से लाभ उठाना और अपना कार्य करना जो कि जिन्दगी के लिये परमावश्यक है, ज्यादा जरूरी है। मौसमे बहार वृक्षों के फल गिनने से उनके फल पहिले खाना ज्यादा अच्छा है।

जीव अनादि और नित्य है या जीव उपाधिकृत चैतन्य सत्ता का नाम है। जीव मोक्ष के पश्चात बुलबुले की तरह जल में फूट जाता है या जल में कोई भिन्न वस्तु बनकर अनन्त काल तक पड़ा रहता है, इन बातों को मोक्ष के बाद देखा जायगा। बहरसूरत दोनों मत उस अनन्त से एक होने पर ही मुक्ति को मानते हैं। ऐसा न हो कि ये दोनों आपस में लड़ते ही रहें और मंजिल की तरफ एक कदम भी उठाना कठिन हो जाय। नहीं, जब पानेवाली चीज एक ही है और चलने वाले एक ही इच्छा को लेकर चल रहे हैं तो बेहतर यही है कि उसको पहिले पाने की चिन्ता करें और उसके बाद तुरन्त ही पता चल जायगा कि वह बुलबुले की तरह उसमें फूट रहे हैं या किसी विजातीय पदार्थ की तरह उससे एक हुए हैं। जब बीमारी एक है और उसका इलाज भी एक है तो फिर नुस्खों के चिह्नों (Labels) पर लड़ने की कोई जरूरत नहीं। हाँ अगर एक तरफ एक ही हस्ती

को दिखाता है और उसका मतलब यही है कि सबको अपने जैसा समझ कर प्यार करें और कर्म का सिद्धान्त यह है कि कोई दूसरे से ऐसी बात न करें कि जो अपने से पसंद नहीं करता अर्थात् व्यवहार-काल में शब्द भिन्न-भिन्न हैं लेकिन मतलब एक ही है।

यो माम् पश्यति सर्वत्र मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो मुझको सब में और सबको मुझमें देखता है वह मुझसे किसी भी हालत में जुदा नहीं है। इसका मतलब यह है कि या तो "सब" कोई और चीज़ है और मुझमें रहने वाला कोई और है। इस भाव से द्वैतापत्ति सामने आती है। लेकिन इसमें सूक्ष्म बात एक और रह जाती है कि जो मुझको सबमें देखता है वह मुझसे जुदा नहीं रहता का मतलब यह है कि "सब" शब्द में कोई बात बाहर नहीं रह जाती यहाँ तक कि सब मे सब का शब्द भी खत्म हो जाता है क्योंकि अगर कोई चीज़ ऐसी फ़र्ज़ की जाय कि जिसमें वह रहता है तो उस चीज़ के अवयव रहने वाले से अपनी भिन्नता को अवश्य प्रकट करेंगे और जिस अंश में व्यापक व्याप्य दो होंगे उस अंश में यह बात घटना मुश्किल हो जायगी कि जो मुझको सब में देखता है क्योंकि यहाँ व्याप्य व्यापक से अलहदा होगा। यहाँ व्याप्य का कोई अंश व्यापक से अवश्य भिन्न होगा। और वहाँ तो सर्वत्र और सबमे अनन्त का होना आवश्यक है। तो सूक्ष्म दृष्टि में द्वैत को स्थान नहीं मिल सकता बल्कि जैसे मट्टी कहे कि जो मुझको कूज़ा, घड़ा और मठ देखता है का मतलब यह होगा कि जो मुझ को मुझ में ही देखता है या जैसे जल, बुदबुदा, तरङ्ग समुद्र के अन्दर विराजमान होकर कहे कि जो मुझको सब में देखता है और सबको मुझमें—का भावार्थ यही होगा कि जो बुलबुला मुझको जल समझ कर लहर, भँवर समुद्र इत्यादि इत्यादि में देखता है वह मुझसे जुदा नहीं रह सकता अर्थात् जो बुलबुला सब में जल ही जल को

देखता है वह खुद भी सिवाय जल के और कुछ नहीं रह सकता क्योंकि अनेकता इस एकता के पसारे का नाम है, इससे भिन्न कुछ नहीं। यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

लेकिन द्वैतवादी यह कहते हैं कि सर्वत्र शब्द व्यापक वस्तु से भिन्न ही है याने व्याप्य और व्यापक दो पदार्थ हैं—एक में सम्बन्ध कथन मात्र है और दूसरे में वास्तव लेकिन सम्बन्ध दोनों में मौजूद है और दोनों में सम्बन्ध को देख कर मनुष्य के अन्दर प्रेम की उत्पत्ति स्वार्थ का त्याग और आत्म-शक्ति की वृद्धि और पापों का विनाश होता है। इसके भाव में पहिले तो मनुष्य सर्वत्र को ही देखता है या व्याप्य को देखता है व्यापक को नहीं। इसमें केवल भौतिकवाद (Materialism) ही सामने रहता है और मनुष्य हर चीज को जुदा समझ कर अपने स्वार्थ की दुनिया अपने ही अन्दर क़ायम करके हर वस्तु को अपने सुख का यन्त्र बनाना चाहता है और अपने सुख को किसी के लिए भी नहीं छोड़ना चाहता। इसे "खाओ, पियो, मौज करो (Eat, Drink and be Merry) का सिद्धान्त कहा जा सकता है क्योंकि इसमें न तो किसी का भय है और न कहीं एकान्त में किसी पाप के करते समय किसी को देखने का डर है। इसमें बाहर से अच्छे बने रहना सुसायटी (Society) को नेक नजर आना और छुप कर किसी भी अपराध को अपराध न समझना, दूसरे के दुःख को दुःख न समझना और किसी भी पाप कर्म के परिणाम से न डरना यह बातें अक्सर किसी महान् शक्ति को सामने न रखते हुए आ ही जाती हैं लेकिन भय तो केवल इतना ही है कि कोई देख न ले और जब मनुष्य की आँख से बच गए तो फिर भगवान और उसकी आँख तो कोई चीज है ही नहीं, फिर डर किस बात का? हम लोगों से छुपते हैं लेकिन जहाँ छुप कर कर्म करते हैं वहाँ कभी इस बात की कल्पना ही नहीं होती कि वहाँ भी कोई देख रहा है और जिन-

दीवालों की आड़ में या जिस जंगल या बियाबान में मनुष्य निर्भय होकर बुराई की तरफ़ चलता है वहाँ अगर उसको पता लग जाय कि यहाँ भी कोई देख रहा है तो उसमें एक अनंत शक्ति के सामने यह बात करने की हिम्मत कैसे पैदा हो कि जिसे मनुष्य के अल्प शक्ति से डरता हुआ वह छुप कर करने को तैयार हुआ। यहाँ तक कि मानसिक विचारों में भी पाप के लिए स्थान नहीं रह जाता कि जब उनका साक्षी अनंत शक्ति रखता हुआ वहाँ पर मौजूद है। जीव स्वार्थ का त्याग न करता हुआ जितना भय से मुक्त होता चला जायगा उतना ही उपद्रव करता चला जायगा। इसलिए भगवान के अस्तित्व का अभाव हमारे विचारों में हमारे जीवन के अधोगति का कारण बनता चला जाता है। बाहर जिनसे भय हो सकता है उनसे आँख बचाई भी जा सकती है और जो आँख बचाने पर सामने आ सकता है वह है नहीं इसका मतलब तो यह हुआ कि दीपक पर फानूस नहीं, चिमनी नहीं और पतंगे के पर खुले हैं तो नतीजा जाहिर है, उसके भस्म होने में कितनी देर लगेगी। प्रभु का भय ज्ञान के प्रकाश का कारण है (The fear of Lord is the beginning of wisdom)।

मेरे गुरूदेव फ़र्माया करते थे कि मनुष्य को भय से मुक्त केवल एक ही अवस्था में होना चाहिए कि जब वह स्वार्थ, अज्ञान और द्वैतभाव की कुल मंजिलों को काट कर अनंत शक्ति मे एक हो जाय। उससे पहिले भय में रहना अच्छा है क्योंकि भगवान् का भय पहिले तो संसार के भय से मुक्त कर देता है और दूसरे कमजोरियों से बचाता है और तीसरे, भगवान को साथ बिठा कर दिल की मज़बूती का कारण बनता रहता है। मेरे गुरुदेव फ़र्माया करते थे कि न मानने से मानना अच्छा है क्योंकि अगर हुआ तो मदद करेगा ही और अगर नहीं हुआ तो ख़्याल ही उसको ध्यान

करता करता उसके आकार को धारण करके हर समय दिल की मज़बूती का कारण बनता जायगा। उसको आँख बन्द कर के माना जाता है और आँख खोल कर देखा जाता है। मुझे आप पर विश्वास है—आप कहते हैं, मैं अमुक स्थान पर यह वस्तु देख कर आया हूँ तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं बिना वहाँ पहुँचे पहिले ही इन्कार कर दूँ। इसमें अव्वल तो विश्वास पर अविश्वास है. और दूसरे (Reason) के खिलाफ चलना इसलिए है कि वहाँ पहुँचे नहीं और पहिले ही इन्कार किए जा रहे हैं। इसलिए महात्माओं के कथन पर अंधविश्वास कर लेना और ईश्वर के अस्तित्व को मान लेना जीवन की नैया को संसार सागर से पार करने में काफी सहायता देता है। यह मंजिल अनीश्वरवाद की है कि केवल प्रकृति को देख कर उसमे किसी महान् अनंत शक्ति को न देखना और स्वार्थ वश रहना।

दूसरी मंजिल 'जो मुझको सब मे और सबको मुझ मे देखना है' की है। इसमें संसार का अस्तित्व बज़ात खुद बना रहता है लेकिन उसके साथ-साथ एक और अनंत शक्ति का सम्बन्ध उसके साथ जुड़ जाता है। इसमें जीव का स्वार्थ तो बना ही रहता है लेकिन स्वार्थ की पूर्ति का मार्ग और बन जाता है। यह समझता है कि दुनिया में रहने वाली एक ऐसी भी ताकत मौजूद है कि जो मेरी गलतियों का जवाब भी दे सकती है और मेरी प्रार्थना को स्वीकार भी कर सकती है। यह किसी चीज से खुल्लमखुल्ला ऐसा बर्ताव नहीं कर सकता जिससे इस अनंत शक्ति का अभाव पाया जाये। जब यह सबमे भगवान को देखने लगता है तो यह हर समय एक ऐसी चीज को सामने रखने लगता है कि जिससे इसका अन्तःकरण पवित्र होता जाता है और यह द्वैत की कई चट्टानों को गिराता चला जाता है। इसके पापों का नाश होता चला जाता है, दिल का हौसला बढ़ता चला जाता है क्योंकि यह ईश्वरीय

नियमों के साथ चलता है या उसका बनता चला जाता है या उसी से अपनी कमियों को दूर करने की प्रार्थना करता चला जाता है तो इसका आईना-ए-दिल साफ़ होता चला जाता है। अब ऐसी अवस्था में वह प्रभु से अपना नाता जोड़ कर इस संसार में अपना जीवन व्यतीत करता है। अब वह ऐसी दुनिया में नहीं रहता कि जिसका रक्षक या मालिक कोई न हो बल्कि यह एक ऐसी दुनिया में रहता है जिसमें पग-पग पर इसका स्वामी इसका साथ देता है। जब यह दुनिया की तरफ नज़र उठाता है तो उसके आकर्षण, तरगीबें, प्रलोभन उसके मन को पग-पग पर डगमगाने वाले साबित होते हैं। यह उस वक़्त किसी सहारे की जरूरत महसूस करता है और हर जगह प्रभू के अस्तित्व को मानता हुआ, अपने आत्मबल की तरक़्क़ी करता हुआ, इन प्रलोभनों से बचता रहता है और ललकार कर कहता है कि—

अगर ग़म लश्कर अंगेज़द कि .खूने आरफ़ां रेज़द ।
शुआए ज़ात अन्दा.जेम व बुनियादश बरन्दाज़ेम ।।

अगर ग़म अपनी .फौज लेकर ब्रह्मज्ञानी, भक्त या उसके आश्रित लोगों का .खून बहाने आये तो उसके प्यारे उसी के विश्वास की किरण या भाले से उसी की बुनियादों को उखाड़ डालें। अब उसको मानने वाला या सब में देखने वाला मित्र से तो इसलिए प्रेम करता है कि उसमें उसका प्यारा मौजूद है और शत्रु से इसलिए नहीं डरता कि उसमें भी उसका प्यारा मौजूद है। संसार की भयंकर से भयंकर अवस्था का सामने आना भी इसके दिल में हलचल पैदा नहीं कर सकता। इसे पता है कि हर सामने आने वाली चीज़ इसके प्यारे को ही साथ लेकर आयेगी चाहे दुःख हो या सुख, तन्दुरुस्ती हो या बीमारी, ज़िंदगी हो या मौत, दुर्भिक्ष हो या भूकम्प, बिजली की कड़क हो या तूफान की गरज, हाथी की चिंघाड़ हो या शेर की दहाड़ सब इसके लिए भय का कारण नहीं

रहती क्योंकि जहाँ यह इन चीजों को देखता है वहाँ इनके साथ उस अनंत सत्ता को भी देखता है कि जिसके थोड़े से संकल्प का नतीजा यह सारा ब्रह्माण्ड है। यह जान लेता है कि यह चीजें स्वतन्त्र नहीं, इनको आधीन रखने वाली कोई और भी शक्ति है। यह उसकी तरफ देखता हुआ हर ग़म से आज़ाद हो जाता है और अगर कोई चीज इनमें से असर करती है तो यह उस असर को अपनी दवा समझ कर सन्तुष्ट हो जाता है। वह बीमारी को बीमारी नहीं समझता बल्कि किसी मानसिक रोग की दवा समझता है। वह दुःख में सुख के समुद्र लहराते देखता है। अन्धेरे बादलों में सफ़ेद पानी के छींटे देखता है, काँटों में फूल और शमा की जलन में सुनहरी किरणों को जरपाशी करता हुआ अर्थात् सोना बिखेरता देखता है। जिस तरह आप उन रीछों से नहीं डरते जिनकी नकेल उनको नचाने वाले के हाथ में होती है। यह हर चीज को रस्सी को भगवान के हाथ में देखता हुआ उनको स्वतन्त्रता का खिताब नहीं देता बल्कि उनको स्वतन्त्रता को परम स्वतन्त्र के हाथ में देख कर निश्चिन्तसा रहता है। जिस तरह चिड़ियाघर के खौफनाक जानवर पिंजरे में बन्द रहने की वजह से अपनी भयंकरता को रखते हुए भी लोगों को डरा नहीं सकते उसी तरह यह हर चीज को ईश्वरीय इच्छा के बन्धन में देखता हुआ निश्चिन्त हो जाता है और यह कहने लगता है कि—

शब हो हवा हो धूप हो तूफाँ हो छेड़ छाड़।
जंगल के पेड़ कब उन्हें लाते हैं ध्यान में॥
गर्दिश से रोजगार की हिल जाए जिसका दिल।
इनसान हो के कम है दरख्तों से शान में॥

जैसे बच्चा माँ की गोद में बैठा हुआ हर चीज को डाँटता है और हर चीज से बेफ़िक्र रहता है क्योंकि जहाँ भी बच्चे का भय पैदा होता है वह माँ की तरफ दौड़ता है लेकिन अगर माँ की

गोद में भी यह भय मालूम हो तो वह किसकी गोद में दौड़े? वह माँ की गोद में हर भय से मुक्त होता है और हर इच्छा की पूर्ति के लिये माँ को पुकारता है। यह उसके जीवन का सुहावना दर्जा माँ को भी प्रसन्न करता है। वह उसके इन्तजार में रहती है जब बच्चा उससे कुछ माँगे और डरे हुए बालक को इस तरह थपकारती है कि वह डर के नक्शे को बिलकुल ही भूल जाता है। अगर आप जल में गोता लगायें तो आपके आगे पीछे ऊपर नीचे जल ही जल होगा। इसी प्रकार जो उसको उसमें देखता है वह हर समय अपना सम्बन्ध एक ऐसी सत्ता से जोड़ कर रखता है कि जो हर खुशी और खूबी की रूहें रवां और खान है। यह वह सत्ता है कि जिससे अधिक दयालू अधिक प्रेम करने वाला और ज्यादा समीप, सर्वज्ञ और उदार कोई दूसरी चीज नहीं। जिसके स्पर्श मात्र से मनुष्य का आसुरी जीवन दैवी बन जाता है और दुःखी जीवन नित्य सुख में बदल जाता है। आपके हाथ पर अशर्फी है, आप खुश हुए। नहीं, ऊपर की जेब में दस लाख के नोट हैं, नहीं, अन्दर की जेब मे एक करोड़ का हीरा है नहीं, आपके हृदय में भगवान् हैं। अब आप मारे खुशी के नाचने न लगेंगे तो क्या करेंगे? अगर मनुष्य को सच्चे अर्थ में एक क्षण के लिये भी यह अनुभव हो जाय कि मैं एक ऐसी महान् शक्ति के समीप बैठा हूँ कि जो मेरी है और मैं जिसका हूँ तथा जिससे हर समय हमारे कल्याण का ध्यान है तो कहिये फिर दिल की क्या हालत होगी। संसार में किसी बड़ी हस्ती के पास कुछ समय बैठने के बाद घंटों तक उसकी खुशी दिमाग से नहीं उतरती तो फिर तमाम जीवन में एक क्षण भर के लिये भी उसकी नजदीकी का अनुभव सारे जीवन को खुशी में न बदल देगा तो क्या करेगा? और फिर जिसको हर समय ही इस बात का अनुभव होता रहे वह स्वयं क्या हुआ और उसकी खुशी क्या हो सकती है इसको कौन बयान करे? कूए का मेंढक उछल कर समुद्र की लम्बाई चौड़ाई को दिखा नहीं सकता। उसके

लिये यह बात असम्भव है। केवल उसके "अस्ति" मात्रता और समीपता का अनुभव मनुष्य के जीवन को दैवी रंग में इस तरह बदल देता है कि जिस तरह पारस पत्थर लोहे को स्वर्ण कर देता है।

एक महात्मा अपनी कुटी से निकल कर बाहर एक चबूतरे पर बैठे हुए थे, भगवान के ध्यान में लगने वाले थे। सामने से एक शेर आ गया। यह मारे खौफ के थर्रा गये, बदन काँपने लगा। शेर की शक्ल ने इनके दिल पर कुछ ऐसा असर किया कि जंगल में जिस तरफ़ भी नज़र दौड़ाते थे इनको शेर ही शेर नज़र आते थे। उनसे न रहा गया। वह दोनों पाँव उठा कर कुटी की तरफ़ दौड़े। दरवाजा बंद करने को ही थे कि अन्दर भी शेर ही नज़र आया। घबराये हुए फिर वहीं पहुँच गये और हाय भगवान्! हाय भगवान्! बचाओ, दौड़ो, रक्षा करो की आवाज़ों ने तमाम जंगल को हिला डाला। लेकिन शेर आगे बढ़ता ही आ रहा था और भगवान् का अस्तित्व इनके लिये न होने के बराबर हुआ जा रहा था। इनसे उन्हें इतनी भी उम्मीद नहीं थी कि जितनी एक लाठी, झोंपड़ी या तलवार से हो सकती है। १० वर्ष की तपस्या के बाद आज यह पहिला मौका था कि ध्यान में बैठते ही शेर सामने आ गया और आज ही दिल की घबराहट की हद हो गई। भगवान् को कहीं न देख कर आवाज़ें दी जा रही हैं। भगवान् को न मानते हुए भी पुरानी आदत से मजबूर होकर भगवान् का नाम लिया जा रहा है। शेर का अस्तित्व एक प्रत्यक्ष और मज़बूत चीज़ बन रहा है और सर्व शक्तिमान् का अस्तित्व उस शेर की शक्ल ने न मालूम कहाँ गायब कर दिया। यह जंगल है या शेर है या महात्मा का कमज़ोर शरीर। भगवान् और उसकी हस्ती का तो कुछ पता ही नहीं। यो माम पश्यति सर्वत्र जिसका दिन भर पाठ किया जाता था उस भगवान् का होना न होने के बराबर हो रहा है। अमली जीवन की नैया औंधी होकर नास्तिकता के समुद्र की तह में पहुँच चुकी है। अब यह महात्मा घबरा कर गिरने

को ही थे कि भगवान् कृष्ण की आज्ञा उनके कानों में मीठी और आशाजनक स्वरों में गूँजने लगी।

यो माँ पश्यति सर्वत्र मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यमि सच से न प्रणश्यति॥
यो मां पश्याति सर्वत्र सर्वच यथि पर्श्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥

यह आवाज़ नहीं थी। एक जादू था जिसने वहम की बुनियादों को उड़ा कर फेंक दिया। महात्मा को कुछ ऐसा तेज़, रौनक और शक्ति अता फ़रमाई कि जिससे विश्वास, आस्तिकता और निर्भयता का एक नया संसार क़ायम हो गया और उन्होंने अपने प्रेमभरे नेत्रों से आँसू गिराते हुए यूँ कहा कि ओफ, माया की प्रबलता कि दस साल जिसकी देहलीजों पर सर रगड़ा उसकी हस्ती को शेर की एक ही झाँकी ने दिल से न मालूम कहाँ उतार दिया और मुझे यह अनुभव कराया कि संसार का अस्तित्व एक वास्तविकता (Reality) है और भगवान का होना एक माया, भ्रम (Illusion) है।

अफ़सोस! मैंने बाहर की आँखों पर एतबार किया और शेर को सत्य माना और जीवन के सर्वाधार भगवान को कि जिनको आज तक विश्वास के नेत्रों से देखना रहा एक शेर का मुँह देखने से उनको भूल गया लेकिन यह उन्हीं की कृपा थी कि उन्होंने मेरे तपोबल का अभिमान तोड़ते हुए फिर अपनी दया का परिचय दिया। और अब मैं सामने केवल शेर ही को नहीं देख रहा बल्कि उसके अन्दर अपने प्रियतम की मुसकराहट को भी देख रहा हूँ कि जो मेरी भूल पर मुस्कराती हुई मुझे फिर याद दिला रही है कि जो मुझको सब मे देखता है और सबको मुझमे,,न मैं ही उससे जुदा होता हूँ और न वह मुझ से। जब महात्मा ने उस शक्ल में भगवान को देखा तो वह भयङ्कर शक्ल अपना सिर झुका कर महात्मा के सामने आ

बैठी। अब वह शक्ल महात्मा की तरफ देख रही थी और महात्मा उस भयङ्कर शक्ल में भगवान को। वह दिन था कि फिर उसके बाद महात्मा 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति' के सिद्धान्त पर इस तरह दृढ़ हो गये कि अब उनके लिये जगत में न तो कहीं भय था और न कहीं लालच वह हर आने वाली हालत में अपने प्रभु और उसकी इच्छा को देख कर शान्त रहने लगे लेकिन कभी-कभी अपनी शेर वाली भूल पर हँस कर कहा करते थे कि अगर भगवान ही भुलाने पर आ जायें तो फिर अपना जोर क्या काम दे। लेकिन जब आप बलहीन हो गये तो भगवान ने अपनी शक्ल दिखाने में कोई कसर बाकी न रखी। यह है भगवान की व्यापकता को देखने का फल। यह जीवन की वह मंजिल है कि जिसमें मनुष्य भगवान को मानकर विश्वास के नेत्रों से सामने देखता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है।

अब रही तीसरी मञ्जिल 'यो मां पश्यति सर्वत्र' की—जिसमें सिवाय भगवान के दूसरा रहता ही नहीं। यह लोग भगवान की तरफ कुछ इस अन्दाज से देखते हैं कि सिवाय भगवान के कोई दूसरा नजर आता ही नहीं। इसका कारण या तो एक चीज में इतना जुड़ जाना है कि दूसरी चीज का ज्ञान ही न रहे। या भगवान के अस्तित्व को इतना बड़ा करते जाना है कि कोई दूसरी चीज साथ रह ही न सके। यह अपने को इसलिये भूल जाते हैं कि भगवान को देखते हैं और दूसरा इसलिये नजर नहीं आता कि भगवान से नजर हटती ही नहीं। यह भगवान के होने को इतना फैलाते हैं कि सर्वत्र और सर्व के शब्द को भी भगवान की ही शक्ल अख्त्यार करना पड़ती है। ये लोग किसी चीज में भगवान को नहीं देखते बल्कि भगवान को ही भगवान में देखते हैं। जब ये नजर पक्की हो जाती है तो इनका भगवान से अलग हो जाना असम्भव हो जाता है। यह कहते हैं—

न तन देखता हूँ न जां देखता हूं।
कि इक बहरे हस्ती रवां देखता हूँ॥

अर्थात् यह वह, मैं, तू को नहीं देखते बल्कि एक ही को सब जगह देखते हैं कि या यूँ कहिये कि सब जगह जो भी वह एक ही देखते हैं। इनका सिद्धान्त है कि अनन्त के साथ दूसरा रह ही नहीं सकता। जब अकार कहीं से चल कर कहीं अपना आप खत्म न करे तो उकार वगैरह अपना पाँव कहाँ रखेंगे? यह इस मञ्जिल में द्वैत को खो बैठता है और उसके साथ अनुकूल और प्रतिकूल भाव को भी। इस तरह इनका हृदय एकत्व में लगा हुआ द्वैत को सामने नहीं आने देता।

एक महात्मा नदी पर जल भरने जाया करते थे और आँख बन्द कर लिया करते थे। किसी ने पूछा आप जल भरते समय आँख क्यों बन्द कर लेते हैं तो उन्होंने कहा मैं अद्वैतवादी हूँ जब जल की तरफ देखता हूँ को उसमें अपना आभास, प्रतिबिम्ब नजर आता कि जिससे मैं और मेरे प्रतिबिम्ब मे द्वैत का कल्पना सामने आती है। मैं इस काल्पनिक द्वैत को भी सहन नहीं कर सकता हूँ। याने यह वे लोग हैं जो ब्रह्म के साथ माया के काल्पनिक अस्तित्व को भी नहीं मानते और अजातवाद के हामी हैं। इनके विचारों में सृष्टि त्रिकाल में हुई ही नहीं और जो प्रतीति है वह भगवान की अपनी ही प्रतीति है। इनका कहना है कि अनन्त के बाहर तो कुछ है नहीं इसलिये भीतर भी कोई दूसरा नहीं। इसलिये उसमें अज्ञान, माया, अविद्या ये कल्पनाएँ असम्भव हैं। केवल सृष्टि के अस्तित्व को समझाने के लिये इस प्रकार को व्यावहारिक और प्रतिभासिक सत्तायं मानना भी ठीक नहीं हैं और ब्रह्म को अज्ञानवश हुआ ख्याल करना भी युक्ति सहित बात नहीं। माया को अनादि मानते हुए ब्रह्म के साथ उसका अनिर्वचनीय रूप कायम करना चेहरे के प्रतिबिम्ब के समान द्वैत की कल्पना करा ही देता है चाहे उसे शान्त मान

कर दिल को तसल्ली दी भी जाय लेकिन सुनने वाले द्वैत का शब्द सुन ही लेंगे।

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वयद् दिरिदम् मृगतोय समम्।
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवम् किम रोदषि मानस सर्व समम्॥

यह कहते हैं कि यह सब मृगतृष्णा के जलवत् है। इतना कहने से भी सब की कल्पना सामने आ ही जाती है। इसलिये जब केवल एक शिव ही है तो तू क्यों रोता है और किस दूसरे का फ़िक्र करता है?

प्रश्नः—अगर अजातवाद में कुछ हुआ ही नहीं तो यह सामने नज़र क्या आ रहा है?

उत्तरः—यह जो कुछ सामने नज़र आ रहा है यह ब्रह्म ही ब्रह्म है। किसी चीज़ में कोई ठोस पन (Solidity) नहीं है। यह सब प्रतीति मात्र है। स्वप्न में जब सृष्टि का भान होता है तो उसकी अपनी सत्ता कुछ नहीं होती लेकिन जैसे स्वप्न में सृष्टि का भान होता है उसी तरह उसमे देश, काल, वस्तु, ठोसपन का पता चलता है। जैसे जागी हुई दृष्टि में स्वप्न की सृष्टि द्रष्टा में लीन हो जाती है उसी प्रकार यह जागृत जो कि दर असल स्वप्न से भी कम सत्ता रखती है अपनी अधिष्ठान के ज्ञान से ब्रह्म में ऐसे लीन हो जाती है कि जैसे किसी अधिष्ठान में अधिष्ठित पदार्थ या रज्जु के ज्ञान में सर्प की प्रतीति। जब ब्रह्म भाव से जगत को देखा जाय तो जगत त्रिकाल में कभी हुआ ही नहीं—केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है लेकिन जब जगत को दृष्टि से देखा जाय तो जगत् एक अपना अस्तित्व बना कर सामने आता है। बस, जगत् क्या चीज़ है?—ब्रह्म भाव को भूल जाना। यह लोग कहते हैं—

आब के होने में जुम्बिश बुलबुले की कुछ नहीं।
यह नमूदी है तमाशा हरकते मौजे हवा॥

अर्थात् जल का भान होने पर बुलबुले की असलियत कुछ नहीं रह जाती और अगर कुछ रह जाती है तो वह तमाम नक़शा एक हवा की हरकत का नतीजा है। इसलिए 'यो मां पश्यति सर्वत्र' का अर्थ श्रुति में यूं है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' अर्थात् जो कुछ सामने नज़र आ रहा है यह सत्य है, ज्ञान-स्वरूप और अनन्त ब्रह्म ही ब्रह्म है। इसके अलावा जो नानात्व की प्रतीति हो रही है वह किंचित् मात्र भी सत्य नहीं।

इस प्रश्न का कि 'एक में अनेक कहाँ से आ गये' सच्चिदानन्द में असत्य, जड़, दुःख रूप जगत की प्रतीति कैसे होने लगी" उत्तर सिर्फ यह है जब तक इसका जवाब ढूँढ़ते रहेंगे उस समय तक इसका जवाब न मिल सकेगा और जिस वक्त सवाल ही न रहेगा उस वक्त जवाब की जरूरत न रहेगी। शीशे में झाँक कर यह पूछना कि इसमें मुँह कहाँ से आगया यह पूछना ही तो उसमें मुँह को पैदा कर रहा है। ब्रह्म मे यह जगत कहाँ से आ गया यह जगत् की भावना ही ब्रह्म में जगत् को दिखा रही है।

एक आदमी ने आकर मुझ से पूछा कि ईश्वर ने दुनियाँ क्यों बनाई तो मैंने कहा कि यह बात आप ईश्वर से पूछ रहे हैं या किसी जीव से, तो वह कहने लगे—महाराज, जीव से। मैंने जवाब में कहा कि जीव को क्या पता है कि ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई। जीव अपनी ही पूरी बातों को नहीं समझ सकता फिर ईश्वर की बातों को क्या समझेगा। आप कहते हैं मन आपका है—अगर यह बात सच है तो आपको अपने मन की पूरी खबर लेनी चाहिए। क्या आप बता सकते हैं कि दो मिनट के बाद आपके मन में कौनसा ख्याल पैदा होगा? अगर नहीं, तो मन आपका कैसे हुआ? मन तो उसका हुआ कि जिसको पता है कि आपके मन में कौन-कौन से विचार पैदा होंगे। जब आप अपने मन की गति ही को

नहीं समझ सकते जिसको कि आप अपना कहते हैं तो फिर ईश्वर की बातों को समझना आपके लिए कितना कठिन है।

भगवान् ने जब दुनिया बनाई उस समय यह दुनिया नहीं थी और न ही दुनियाँ के भाव, कल्पनाएं (या Motives)। उस वक्त जिसके अन्दर इसकी उत्पत्ति का विचार हुआ वह इन तमाम बातों से ऊपर था कि जिनको आज हम मन में देख रहे हैं। इसलिये उसके उस समय के भाव को कि जब दुनियां और उसके नियम न बने थे उन नियमों से समझने की कोशिश करना कि जो उत्पत्ति काल से बाद की चीज़ है गलत नहीं तो क्या है? सृष्टि अपने रचयिता के भाव नहीं समझ सकती। पिता के जन्म को पुत्र नहीं देख सकता। कोई अपने कंधों पर आप खड़ा नहीं हो सकता। इसलिये सृष्टि की सीमाओं (Creational Limitation) में रहते हुए अपने कर्त्ता के भावों को जानना कठिन नहीं तो क्या है? बुद्धि से पूछा गया—क्या तू बता सकती है कि इस शरीर के अन्दर वह कौन है कि जिसको पाने के लिये, जिसको देखने के लिए तू हर समय लगी है क्योंकि तू जहाँ पहुँच सकती है वहाँ बाकी इंद्रियां नहीं पहुँच सकतीं। तू बग़ैर नज़र से देख सकती है और बग़ैर दिमाग़ के सोचती है। आखिर तू ही बता कि इस शरीर के अन्दर वह कौन है कि जिसके दर्शनों के लिए तू बेकरार और अशान्त है? उसने कहा इस बात का जवाब मेरे लिये किस क़दर मुश्किल है क्योंकि जब तक मैं हूँ वह सामने नहीं आता और जब वह सामने आता है मैं नहीं रहती। दीपक सूर्य के प्रकाश को देखने के लिए जलता है यानी रात्रि में दीपक जलाने का मतलब यह है कि दिन चढ़ आये। लेकिन दीपक के भाग्य देखिये कि उसे सूर्योदय से पहिले ही बुझा दिया जाता है। रात भर वह सूर्य ही की प्रतीक्षा में जला और सूर्योदय से पूर्व बुझा दिया गया। दूसरे शब्दों में वह अपना आप खोकर सूर्य के प्रकाश में मिल गया लेकिन ग़ैर बन कर उसको

न देख सका। इसी प्रकार बुद्धि की दौड़ गुणों तक या (Limitations तक है या जहाँ-जहाँ बुद्धि दौड़ती है वहाँ गुण और Limitations पैदा किये चली जाती है और तलाश यह है कि कहीं निर्गुण का पता लगे और Unlimited का अनुभव हो। यह आश्चर्य नहीं तो क्या है कि सूरज को तरफ पीठ करके साया को कह रहा है कि यह कहाँ से आ गया ? इस अमल से ही साया बन जाता है।

आप ही डाल साया को उसको पकड़ने जाय क्यों ?
साया जो दौड़ता चले कीजिए हाय हाय क्यों ?

आवाज़ देकर यह कहना "आवाज़ कहाँ से आ रही है" यह कोई क्यों बोल रहा है—यह खुद आवाज़ को पैदा करता है। दूसरों को चुप रहो का शब्द कहना ख़ामोशी को ख़ुद तोड़ना है। यह जगत कहाँ से आ गया, क्यो आ गया-जिस अवस्था मे बैठ कर यह प्रश्न किया जा रहा है वही अवस्था इस जगत को पैदा कर रही है।

मैंने उनसे कहा कि एक जीव को क्या पता है कि ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई। तब उन्होंने कहा कि नहीं, महाराज ! आप ईश्वर के समीप हैं, उसके प्यारे हैं इसलिये भगवान् ने आपको अवश्य बता रखा होगा कि उन्होंने दुनिया क्यों बनाई। मैंने कहा कि क्या यह बात ईश्वर ने आपसे छुपा ली है कि उन्होंने दुनिया क्यों बनाई ? तो उन्होंने कहा—जी हाँ। तब मैंने कहा उसके प्यारो की शामत आई है जो उन बातों को प्रकट करते फिरें कि जिनको भगवान् छिपा रहे हैं। यह तो भगवान् को ही लड़ाई का आह्वान (Challenge) देना होगा। तो वह कहने लगे तो फिर क्या मै निराश जाऊं, मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा कि भगवान् ने दुनिया क्यों बनाई। तब मैंने कहा निराश होने की कौन सी बात है। आप तो अपने प्रश्न का उत्तर पहले ही दे चुके और वह यह कि उसके प्यारों को, उसके समीप रहने वालों को पता चल जाता है इसलिये आप भी उसके

नजदीकी और प्यार बन जाइए, आप पर यह बात .खुद ही रोशन हो जावेगी। तो वह कहने लगे कि ठीक है नजदीक ही बनने का रास्ता बताइए। तब मैंने कहा कि रोशन कमरे में लाने का तरीक़ा क्या है? अंधेरे कमरे का छोड़ना। अमीरी तक पहुँचना ग़रीबी को छोड़ना है। ज्ञान तक पहुँचना अज्ञान का त्याग है। इसलिए भगवान् तक पहुँचने का तरीक़ा ज़ाहिर ही है कि आप दुनिया को छोड़ दें और इसे छोड़ कर भगवान् के समीप हो जायें और फिर वहाँ जाकर उनसे पूछें कि आपने दुनिया क्यों बनाई तो वह ज़रूर हँस कर कहेंगे कि यहाँ दुनिया है कहाँ. कि जिसके मुतल्लिक तू पूछ रहा है कि मैंने क्यों बनाई। दुनिया रहते हुए तो इसका जवाब देने वाला कोई नहीं कि दुनिया क्यों बनी और भगवान् के पास पहुँच कर दुनिया ही नहीं रहती तो जवाब किस बात का दिया जाय और सवाल किस बुनियाद पर क़ायम हो।

इसलिए यह तीसरी नज़र अज्ञानवाद का प्रश्न ही पैदा नहीं होने देती तो उत्तर कहाँ से आ जाय? चाहे इन्हें हठीला समझिए।

"ज़मी जुम्बद न जुम्बद गुल मोहम्मद"

अर्थात ज़मीन हिल जाय लेकिन गुल मोहम्मद नहीं हिलेगा। हनुमानजी से तो हर प्रश्न के उत्तर में राम ही का नाम सुनाई देगा'। अपनी कोई कुछ भी हाँकता रहे वहाँ तो हर सवाल का जवाब और हर मर्ज़ की दवा केवल राम ही राम है। वह तो क़ीमती मोतियों की माला के दानों को तोड़ कर भी यही देखेंगे कि इनमें राम है या नहीं। यहाँ तक कि अपने अन्दर टटोल कर राम को ही देखेंगे। न तो उन्हें जगत् से वास्ता है न अपने से। वह तो सिवाय राम के कुछ देखने को तैयार ही नहीं। अगर पूर्णिमा के चन्द्रमा में किसी को दाग़ नज़र आता है तो आता रहे, रोशनी के चाहने वाले तो केवल रोशनी को ही ढूंढेंगे। इन लोगों ने हठ कर लिया है कि हर बात का जवाब एक ही होगा। राम और केवल राम। ब्रह्म और केवल ब्रह्म।

आपके हर बात के जवाब में यह सर्व खल्विद ब्रह्म ही कहते रहेंगे। यह राम को तो राम कहेंगे ही लेकिन मार को भी उलटा राम ही पढ़ेंगे। जिसे आप "मार" देखेंगे उसे यह दूसरी तरफ़ से पढ़ कर "राम" ही देखेंगे। अगर आपको एक तरफ से मार को मार देखने का अधिकार है तो इनका दूसरी तरफ से देखना भी आप छीन नहीं सकते। इसलिए—

दोस्त ग़मख्वारी मे मेरी सभी फ़रमायेंगे क्या।
ज़ख्म के भरने तलक़ ना,खुन न बढ़ आयेंगे क्या॥
बेनियाज़ी हद से गुज़री बन्दापरवर कब तलक।
हम कहेंगे हाले दिल और आप फ़रमायेंगे क्या॥
खाना जादे ज़ुल्फ हैं ज़ंजीर से भागेंगे क्या।
हैं गिरफ्तारे वफा ज़िंदा से घबरायेंगे क्या॥
हज़रते नासे गर आयें दीदाओ दिल फ़र्शेरा।
पर कोई इतना ता समभा दो कि समभायेंगे क्या॥

सच बात तो यह है कि इनके दिलों पर इनका प्यारा कुछ इस तरह नक़्श होकर बैठ गया है कि न तो अब उस पर कोई दूसरा नक़्श क़ायम हो सकता है और न पहला नक़्श उतर सकता है। यह लोग—

"यो माम् पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति"

का अर्थ कुछ इस अन्दाज से समझे हैं कि जिसमें अपने आप और जगत की कहानी को कहीं जगह ही नहीं रह जाती। इन्हें आप दीवाना कहिये या पागल यह किसी की भी सुनते कब हैं।

रहे इश्क़ तारीक है बहुत मुश्किल।
करे दीवाना जित्ये दीवाना॥
नाल यार दे मुल्ल के ला बैठा।
में तां याराना मेरा याराना॥

करो मेहर ते देओ दीदार तरियां।
दिलबर जानां न तुसी जानां न ॥
आतिश हिज्र अन्दर जले राम अनलहक़।
जीवें परवाना तेनूं परवा ना ॥

गोया इस तरह यह अपने धुन के पक्के हैं कि इन पर कोई बात असर कर नहीं सकती। और किसी को देखना तो दरकिनार यह अपने अक्स तक को भी पानी की तेज रवानी में देखना पसन्द नहीं करते। खैर इनको यहाँ छोड़िए, और हर व्यक्ति को अपने-अपने मार्ग पर चलने दीजिए। दूसरे को जगाइए लेकिन उस हद तक कि स्वयं न सो जाइए। दूसरों को होशियार करते-करते खुद दीवाना न बन जाइये। हम किस मंजिल पर हैं, हमारी इच्छाएं हम पर क्या जाहिर कर रही हैं, हमसे छुपा नहीं है इसलिए अपनी ही मंजिल से चलना ठीक है और उस समय तक चलते रहना दुरुस्त है कि जब तक रास्ता खतम न हो जाय।

अब हमें यह तो पता लग ही गया कि इस दुनिया का बनाने वाला भी कोई मौजूद है। इसलिए हम अकेले नहीं। हमारा सहारा भी मौजूद है इसलिए हमें शान्ति का मार्ग ढूँढते हुए या परमानंद की प्राप्ति के लिए अपने मालिक का छोड़ नहीं देना चाहिए। अब हमें यही देखना है कि हम इन तमाम बातों को सामने रखते हुए, इसी शरीर में रहते हुए, परमानंद की प्राप्ति कैसे कर सकते हैं और इच्छाओं के साथ होते हुए भी इनमें शान्ति को कैसे हासिल कर सकते हैं और इसी संसार में रहते हुए अपने कुल कार्य करते हुए किस प्रकार जीवन मुक्त हो सकते हैं और ससारी तमाम उलझनों में भी किस तरह शान्ति को कायम रख सकते हैं।

इच्छा का स्वरूप किसी चीज को चाह कर उससे दूर रहना है और यह दूरी दुख का दूसरा नाम है। जब तक इच्छा रहेगी उसको

कभी तंग करती रहेगी। अब आगे चल कर इच्छाएं कैसे पूर्ण हो सकती हैं या कैसे मिटाई जा सकती हैं, ईश्वर के अस्तित्व को साथ रख कर इन बातों पर विचार किया जायेगा और एक ऐसा सरल उपाय ढूँढ़ने की कोशिश की जायगी कि जिस पर प्राणी चल कर परमानंद की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति कर सके।

संसार चक्र में रहते हुए मोक्ष की प्राप्ति का उपाय

संसार में मनुष्य अनुकूल तक तो प्रसन्न रहता ही है लेकिन जब तक प्रतिकूल में प्रसन्न रहना न सीख ले उसकी .खुशी पूर्ण नहीं रह सकती। जो प्रतिकूल में भी .खुश रह सकता है उसके लिए ना.खुशी फिर कहीं नहीं। जिसने अंधेरे को रोशनी बना लिया है उसके लिए अंधेरा कहीं नहीं। जिसने गरीबी में अमीरी का आनन्द लेना सीख लिया है उसके लिए ग़रीबी कोई चीज़ नहीं। जिसने मौत को ज़िंदगी समझ लिया है उसके लिए मौत कहीं नहीं। जिसने बन्धन में मोक्ष के सुख को ले लिया है उसके लिए बन्धन कहीं नहीं।

यूं तो ऐ सैयाद! आज़ादी के हैं लाखों मज़े।
दाम के नीचे फड़कने का मज़ा कुछ और है॥

संसार में दो हालतें नज़र आती हैं—दुःख और सुख, मौत और ज़िंदगी, अंधेरा और प्रकाश, बन्धन और मोक्ष इत्यादि—इनमें से एक हालत में .खुश रहना तो मनुष्य के लिए स्वाभाविक

ही है—सुख किसको अच्छा नहीं लगता। लेकिन प्रश्न तो यह है कि दुःख में कैसे ख़ुश रहा जाय। इसके केवल दो ही उपाय हो सकते हैं—या तो दुःख को दुनिया से निकाल दिया जाय और या दुःख को सुख में बदल दिया जाय। संसार से दुःख का निकालना तो ऐसी बात है कि जो हो नहीं सकती। लेकिन उस दुःख को सुख में बदलना यह असम्भव बात नहीं।

ग़र न मानद दर दिलम पैका गुनाहे तीर नेस्त।
आतिशे सोज़ाने मन आहन गुदाज़ उफ़्तादा अस्त॥

अर्थात् अगर मेरे दिल मे तीर की नोंक अपना असर नहीं कर सकती तो यह उसकी कमजोरी का सबूत नहीं बल्कि मेरी सुलगती हुई आग (प्रेमाग्निः) ही उसको आते आते पिघला देती है।

एक स्त्री जो कि बहुत तपस्या के पश्चात् ज्ञान की उच्च मंज़िलों पर पहुँच चुकी थीं संयोगवश बीमार हो गईं। उनकी झोंपड़ी किसी जंगल में थी, उनका एक-एक क्षण, प्रभु की याद मे व्यतीत होता था, बुढ़ापे की अवस्था में भगवान की याद और जवान हो चुकी थी। इनकी बीमारी की खबर जंगल के कोने-कोने में किसी प्रकार फैल गई। इस ख़बर को सुनते ही तीन महात्मा आपकी सेवा मे उपस्थित हुए और कहने लगे माताजी प्रणाम! धीमी आवाज़ में उन्होंने जवाब दिया" बेटा! प्रसन्न रहो, सुखी रहो, भगवान के ध्यान में लगे रहो, अपना एक क्षण भी प्रभु को भूलकर न काट सको"। इतना सुनते ही महात्मा अपने दुःख को न संभाल सके। दुःख के बादल आँखों से आँसू बन कर बरस पड़े और बादल की गरज की तरह वे बेअख़्त्यार ऊँचे स्वरों मे रोने लगे कि हम लोगों पर निराशा की अंधेरी रात छाने वाली है क्योंकि इस दुनिया से दैवी सूर्य अस्त नजर आता है। क्या यह हम लोगों का दुर्भाग्य नहीं कि आप जैसी महान् हस्ती, जिन्होंने ज्ञान की कुल मंज़िलें तय कर ली हैं आज हमारे सामने इस क़दर बीमार पड़ी हैं। अगर आपको कुछ हो गया

तो यह नुक़सान आपका नहीं बल्कि हमारा होगा। आपका तो इसलिए नहीं क्योंकि आपको जो कुछ प्राप्त करना था कर ही चुकीं और हमारा इसलिए कि हमें अभी बहुत कुछ पाना है।

दौर में सागर रहे गर्दिश में पैमाना रहे।
मैकशों के सिर पे या रब पीरे मैखाना रहे॥

आपका साया हमारे सिर पर लाखों वर्ष बना रहे, आपके आशीर्वाद हमारे साथ हमेशा रहें। हमारी रूहानी मुश्किलें आपकी नज़र से कट जाती हैं। अपने लिए नहीं तो हमारे लिए हमेशा इस शरीर को हमारे सामने रखिए।

यह सुन कर वह मुस्कराती हुई दिलेराना आवाज़ में बोलीं आप इस समय मेरी वृत्ति को भगवान् से हटा कर शरीर में क्या जोड़ रहे हैं। आपका बार बार इस प्रकार की बातें करना आपके प्रेम का बड़ा प्रमाण है लेकिन मैं फिर भी चाहती हूं कि आप मेरे सामने कुछ भगवन् सम्बन्धी बातें भी करें ताकि आप लोगों के मुंह से इस प्रकार का ज़िक्र सुन कर मेरा दिल और ख़ुश हो।

वे कहने लगे कि हम लोगों की क्या शक्ति है कि आपके सामने भगवान के ज्ञान का दम मार सकें। अगर हम क़तरे हैं तो आप समुद्र हैं, अगर हम किरण हैं तो आप सूर्य हैं, अगर हम भिखारी हैं तो आप दाता हैं, इसलिये सूरज के सामने दीपक जलाना बेकार नहीं तो क्या है?

इन माता ने कहा—अच्छा, अगर आप लोग इस दृष्टि से बात नहीं करना चाहते तो आज्ञापालन से ही इस तरह की बातें कीजिए, या जो-जो आपने आज तक सीखा है उसको बयान कीजिए। (पहले महात्मा को मुखातिब करते हुए)—आपको कितने वर्ष साधु हुए हो गये?

महात्मा—बारह वर्ष।

माता—आपका बारह वर्ष का अनुभव क्या है ? आप रुहानी मंजिलों में कहाँ तक पहुँचे हैं ? आपका दृढ़ भाव क्या है और आप संसार में किस तरह रहते हैं ?

महात्मा—मैं संसार से पीड़ित हो कर, संसार की अनित्यता को अनुभव करता हुआ दुःख से बचने के लिए इस जंगल में आया और आज बारह साल के तप के बाद दुःख से बचने का या दुःख को कम करने का केवल एक ही उपाय ढूँढ़ा है और वह मेरी बारह साला मेहनत का फल है। मैं अब आगे से बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं अब दुःख से उतना नहीं घबराता जितना कि पहले। और इस मंजिल मे मुझे बहुत आराम मिल रहा है। इस मंजिल का नाम सब्र है और केवल सब्र।

पहले जब जब संसार में दुःखी होता था, लड़खड़ाता था, घबराता था, चीख़ता चिल्लाता था, नतीजे में अपना दुःख दूना कर लेता था। आराम मेरे नज़दीक नहीं फड़कता था। मैं उस पक्षी की तरह था जो पिंजरे में क़ैद हो जाने के बाद फड़फड़ाकर और लोहे की सीखों से टकरा कर और घायल हो चुका हो और पिंजरे की सीखों को तोड़ न सका हो और उसे दूसरा पक्षी पिंजरे में क़ैद होकर यह कह रहा हो कि—

हम तो क़फस में आये खामोश हो रहे।
ऐ हम सफ़ीरो फ़ायदा नाहक़ के शोर का॥

अर्थात् हम भी तुम्हारी तरह इस पिंजरे में आये और क़ैद हो गये लेकिन अन्तर केवल यह है कि तुम फड़फड़ा रहे हो और मैं खामोश हूँ। जिस समय को तुम फड़फड़ा कर काट रहे हो उसको मैं खामोशी से काट रहा हूँ। इसलिए ऐ पिंजरे में फड़फड़ाते हुए पक्षी, मुझे ज़रा इतना बतला दे कि इस नाहक़ के शोर का फ़ायदा

क्या है ? फड़फड़ाहट से नतीजा क्या है जब कि तुम्हारी फड़फड़ाहट न तो तुम्हारे लिए शान्ति का कारण है और न पिंजड़े की तीलियाँ ही इससे टूट सकती हैं। इसलिए ऐ आराम और आजादी के मुतलाशी ! इस प्रकार अपने दुःख को न बढ़ा बल्कि होशियार बन कर मेरी तरफ देख और इस खामोशी से अपने दुःख को कम करने की कोशिश कर।

ऐ दिल अन्दर बन्दे ज़ुल्फ़श अज़ परेशानी मनाल।
मुर्ग़ ज़ीरक चूं बदामुफ़्तद तहम्मुल बायदश॥

अर्थात् ऐ पक्षी, याने ऐ मेरे दिल, तू उसकी ज़ुल्फ याने लटाओं के बन्धन में अर्थात् उसके इच्छा के बन्धन में जकड़ा जाकर छूटने के ख्याल को लेकर फड़फड़ा नहीं और रो नहीं क्योंकि अक्लमन्द पक्षी जब पिंजरे में फंस जाय तो उसे सब्र से काम लेना चाहिए। अगर बाग़ की आजादी में कुछ लुत्फ था तो पिंजरे की क़ैद भी आनन्द से खाली नहीं क्योंकि वहाँ बाग़ की आजादी के साथ शिकारी और जाल का डर मौजूद था जो कि पिंजरे की क़ैद में नहीं। यहाँ कोई शिकारी तीर लेकर तुझे मारना नहीं चाहता और कहीं फरेब और मकर के जाल तुझे पकड़ने के लिए सामने नहीं।

न तीर कमाँ में है न सैयाद कमीं में।
गोशे में क़फ़स के मुझे आराम बहुत है॥

अर्थात् यहाँ न तो शिकारी घात लगाए बैठा है और न वह अपने तीर की नोक हमारी तरफ किए है। यहाँ हम लोग मौन में निर्भय हैं इसलिए पिंजरे के कोने में हमें काफी आराम मिल रहा है। और अगर बाग की याद और वहाँ की उड़ान तुझे पिंजरे की तीलियों के अन्दर ख़ुशी की किरण को देखने नहीं देती तो तू इतना ही कर कि इस अपने दुःख को न बढ़ा बल्कि ख़ामोश होकर सब्र से अपना वक़्त काट। यह सब्र तेरी ज़िन्दगी को इन तमाम

पक्षियों से ऊँचा कर देगा कि जो पिंजरे में क़ैद होकर फड़फड़ा रहे हैं।

माताजी ! मैं केवल इतना ही सीखा हूँ। मैं अपने समय को सब्र से काट कर अपने दुःख को बढ़ाता नहीं बल्कि घटा लेता हूँ। मुझे पता है कि सब्र कड़वी चीज़ है लेकिन इसका फल मीठा है। सुख तक तो मैं सुखी रहता ही हूँ लेकिन दुःख रूपी शत्रु को सब्र के भाले से नीचा करने की कोशिश करता हूँ। भगवान् की दया और आपके आशीर्वाद से मै बारह वर्ष में इस मंज़िल तक पहुँचा हूँ और आपकी कृपा से मेरे पाँव यहाँ पर ऐसे मजबूत जम चुके हैं कि दुनिया की कोइ हालत मुझे सब्र की मंजिल से डगमगा नहीं सकती।

पुख्ता तबओं पर हवादिश का नहीं होता असर।
कोहसारों में निशाने नक़्शे पा मिलता नहीं ॥

अर्थात् जो एक मंजिल में डट कर खड़े हो गये हैं और वह बात उनके मन का हिस्सा बन चुकी है, उनकी इस परिपक्व अवस्था पर दुनिया की कोई बात असर नहीं कर सकती जैसे चट्टानो पर चलने से पॉव का अक्स याने निशान नहीं पड़ सकता।

मै इस सब्र को हृदय की सबसे बड़ी वस्तु समझता हूँ। दुनिया की चीज़ें एक न एक समय अवश्य दुःख देती हैं। दौलत अक्सर जीव हत्या का कारण बन जाती है, ऊँचे-ऊँचे मकानात भूकम्प के समय झोंपड़ियों से ज्यादा डरावने हो जाते हैं। विद्या का गौरव शास्त्रार्थ में हारने से दुःख का कारण बनता है, सम्बन्धी वियोग के समय दुःख देते हैं, हर आया हुआ सुख जाकर दुःख देता है, हर खुशी का फूल मुर्झा कर काँटा बन जाना है, शत्रु मिल कर और मित्र जुदा हो कर दुःख देता है, सुख जा कर और दुःख आकर दुःख देता है, जिन्दगी मौत को दिखा कर दुःख देती है और मौत जिन्दगी की इच्छा पैदा करा के दुःख देती है। अर्थात् दुनिया की हालत कुछ ऐसी है कि :—

ढांकूं जो पाँव को तो यह जाँ है कि सर खुले।

याने दुनिया की चादर हमारी इच्छा के शरीर पर कुछ इतनी छोटी है कि अगर उसकी एक बात पूरी होती है तो साथ ही दूसरी पैदा हो जाती है याने उसका एक हिस्सा ढकने पर दूसरा नङ्गा हो जाता है। जिन्हे मिला नहीं वे ढूँढ रहे हैं जो पा चुके हैं उन्हे खोये जाने की चिन्ता है और जो खो चुके हैं वे रो रहे हैं। अफसोस ! इस दुनिया के बाग में काँटे तो काँटे हैं ही लेकिन फूल भी काँटों से कम नहीं हैं। लेकिन इन तमाम चीजों में मेरा सब्र कीमती है जो मुझे कभी दुःख को बढ़ते नहीं देखने देता। जब दुःख की अँधेरी रातें गड़गड़ाते बादलों को लेकर मेरे सर पर छा जाती हैं तो वहाँ इस सब्र की चमकती हुई किरणें मुझे इस अंधकार से बचाती हैं। मेरे दिल की ढाढ़स, मेरे चित्त की शान्ति, मेरे दिल की तृष्णा को दूर करने वाली केवल एक ही चीज है और वह है सिर्फ सब्र। मैं इसको अपनी जान से अजीज समझता हूँ, यह मुझे अपने प्राणों से प्यारी चीज है क्योंकि प्राणों पर जब बन जाती है तो वह दुःख का कारण हो जाते हैं। लेकिन सब्र कुछ ऐसी चीज है कि जब प्राणों पर बन जाती है तब भी उस दुःख से बचाता है। यह प्राणों को भी सुख देने वाली चीज है। इसलिए यह जान का आराम है।

यह सब्र मेरी गरीबी के दुःख को दूर करता है। सामान कम होने पर भी मुझे उनमें सुख की झलक नजर आती है और कभी यह सब्र जाहिरी मानों में भी फलने-फूलने लगता है। जब मैं एक हालत में सब्र करता हूँ तो उसके फौरन बाद ही मुझे उससे बेहतर हालत मिल जाती है। यह भी सब्र का ही फल होता है। सब्र दो तरह आराम देता है—एक तो गिरी हुई हालत के दुःख को कम करके और दूसरा फल अच्छा देकर।

जिसकी वस्त तिस आगे राखे। प्रभु की आज्ञा माने माथे॥
उसते चौगन करे निहाल। नानक साहेब सदा दयाल॥

४. जब हमारी रूहानी मंज़िलों की तरक्क़ी या आत्म-उन्नति के लिए प्रभु हम पर कोई दुःख भेजते हैं या हमसे कोई चीज़ वापस लेते हैं तो उस समय सब्र ही एक ऐसी चीज़ है जो किसी हद तक आत्म-समर्पण का सबक़ सिखाती है। लेकिन जब हम उसकी मर्ज़ी को मानते हुए वक़्त को सब्र से काटते हैं तो वह दयालु पिता हमारी उस हालत को देखता हुआ हमें चौगुनी चीज़ें बख्श देता है क्योंकि हमसे कोई चीज़ वापस लेकर या हमें दुःख देकर उसे न तो अपना घर ही भरना है और न हमसे कोई बदला ही लेना है। केवल हमें रूहानी मंज़िलों में तरक्क़ी देने के लिए कभी-कभी दुनियावी मुश्किलें हमारे ऊपर डाल दी जाती हैं और उसके फ़ौरन ही बाद दया का हाथ बढ़ा कर हमें ज़ाहिरी चीज़ें भी आगे से ज़्यादा दे देता है।

एक आदमी के दो बच्चे थे। उसने एक बच्चे को साइकिल ले दी और दूसरे को कुछ न दिया। लेकिन दूसरे बच्चे ने अपने भाई को साइकिल मिलते देख कर कोई शिकायत न की बल्कि नीची आँखें किए खामोश बैठा रहा। मगर पहला बालक कि जिसको साइकिल मिल चुकी है यह कहता हुआ सुनाई दिया कि आपने मुझे मोटर नहीं लेकर दी—सिर्फ साइकिल ही से बहला दिया। और यह शिकायत उस समय की जब कि वह देख रहा था कि उसके दूसरे भाई को कुछ भी नहीं मिला और फिर भी वह खामोश बैठा है। लेकिन पिता ने यह सुनते ही फ़ौरन मोटर मंगवाई और अपने उस बच्चे को दे दी जो कुछ न मिलने पर भी खामोश बैठा था। लड़ना, झगड़ना तो दूर किनार, इतना भी नहीं कह रहा था कि मुझे कोई चीज़ भी लेकर नहीं दी। आखिर मैं भी तो आपका ही बच्चा हूँ! जब पहिले भाई ने अपने दूसरे भाई को मोटर मिलते देखी तो इस क़दर झुंझलाया कि शिकायत का दफ़्तर खोल दिया

और कहने लगा कि आपने मुझे तो सिर्फ साइकिल ही ले कर दी लेकिन मेरे भाई को मोटर ले कर देदी। इस पर पिता ने कहा— तुम्हारे भाई को इस बात का इनाम मिला है कि जब वह तुम्हें साइकिल मिलते देख कर भी खामोश ही बैठा रहा और उस समय भी शिकायत नहीं की जिस समय उसे कुछ नहीं मिला। तुम उस वक्त भी शिकायत कर रहे थे और अब भी शिकायत कर रहे हो। उसे उसके सब्र का फल मिला।

इसी तरह सब्र उस समय भी खुश रखता है कि जब कुछ न हो और उसके बाद भी फल लाता है। फिर यह मुझको प्यारा क्यों न हो? आखिर मेरी बारह साल की कमाई या पूंजी केवल यही तो है। इसे मैं ज़िंदगी के साथ रखूंगा और मौत के बाद हासिले ज़िंदगी या ज़िंदगी का फल लेकर इसे साथ ले जाऊंगा। यही एक तोहफा है कि जिसे मैं भगवान के सामने पेश कर सकूंगा। यही मेरी भेंट होगी।

यह तमाम बातें करते हुए महात्मा के चेहरे पर कुछ ऐसी किस्म की रोशनी थी कि जिसकी किरणें दुःख के अंधकार को कम करने में समर्थ थीं। और जब वह हीरा उसके सर पर चमकता नजर आता था तो इसकी चमक दुनिया के हर हीरे की चमक को शरमा देती थी। वह अपने दिल की सल्तनत में अपनी तमाम इच्छाओं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जो दुनिया में इस हीरेवाले ताज को लेकर हकूमत करता था। वह इच्छा को सब्र से दबाता था और जब इच्छा प्रतिकूल होने पर क्रोध पैदा होता था तो उसे भी सब्र से दबाता था। और जब क्रोध के मातहत क्रोध को मिटाने वाला वीर लोभ आता था (क्रोध का काम है कि जब कमजोर पर आता है तो तुर्श हो जाता है। जब अपने से ताकतवर पर आता है तो पीला पड़ जाता है। लोभ भी और इस तरह रहता है कि जब कोई व्यक्ति अपने मातहत को दुःखी करता है तो उस क्रोध का असर होता है लेकिन उसे भर

है कि अगर मैं क्रोधित हुआ तो निकाल दिया जाऊँगा, फिर रुपया कहाँ से मिलेगा, सब परिवार वाले भूखों मर जायेंगे। इसलिये यह लोभ, उस क्रोध को दबा लेता है।) क्रोध का शत्रु लोभ है लेकिन सब्र उसको भी दबा लेता है जब कि वह ग़रीबी में रह कर भी अपना समय काट सकता है।

लोभ के बाद मोह आता है। मोह में जब वियोग का अंश आता है तो यह सब्र ही एक चीज़ है जो उस वक़्त ढाढ़स देती है और जब अपना अहंकार और अभिमान दूसरे के अधिक ऐश्वर्य को देख कर मद पड़ जाता है तो वहाँ यह सब्र ही है जो दिल में तसल्ली या शांति का कारण बनता है। यह सुख में सुखी रखता है और दुःख में भी। बस यह एक ऐसी दवा है जो हर बीमारी का इलाज है। यह रजोगुण और तमोगुण दोनों को दबाता है। मौजूदा अवस्था में खुश रहना सीखता हुआ आगे की तरफ़ कम देखता है। इस तरह रजोगुण को दबाता है और तमोगुण का परिणाम खराब देखता हुआ सब्र से काम लेकर उसको भी दबा जाता है। बस यह अपने दिल की उस सल्तनत में कि जिसमें ख्यालात और वृत्तियों की प्रजा लाइन्तहा और अनंत है यह इन सब पर सब्र का ताज पहन कर हुकूमत करता है और इस प्रकार पास कुछ भी न रखता हुआ सब कुछ रखने वालों से कि जिनके पास सब्र की दौलत नहीं, ज्यादा खुश नज़र आता है।

यह सब्र एक ऐसी दौलत है कि अगर ईश्वर को मानते हुए सब्र से काम लिया जाय तो आगे आराम की उम्मीदें और बढ़ जाती हैं चूंकि इसमें अपने मालिक के हुक्म को जब्र करके भी अपने मन को मनवाया जाता है। इस कड़वी कुनीन को आँख बंद करके पी लिया जाता है। इस नश्तर की चुभन को दम रोक कर सह लिया जाता है—यह समझते हुए कि यातो यह उसकी मर्जी है और या इससे हमारे पाप कर्म दूर हो रहे हैं और या इससे कोई नई चीज़ मिलने वाली है। इसके सब्र और खामोशी को देखता हुआ इसका

पिता इसको हृदय से लगा कर न जाने क्या कुछ देने की सोच लेता है। वाह रे मन्न! तेरी शान, तेरे अंदाज, और तेरे नाज। तू खामोश बैठ कर बोलतों से ज्यादा काम ले लेता है और दम रोक कर जिन्दगी की लाइननद्दा कर लेता है।

मेरे पास एक प्रेमी ने आकर कहा कि महाराज! अगर कुछ मांगने से ही और जिद करने से ही मिलता है तो मैं भी दूसरे का तर्ज अमल सीखूं और आपको बार बार माँग कर तंग किया करूँ। कहीं मेरी खामोशी मुझे पीछे न फेंक दे—मांगने वाला ले जाय और चुप रहने वाला खाली रहे। मैंने कहा कि अव्वल तो आप इस चुप रहने की आदत का छोड़ ही नहीं सकते क्योंकि जैसे वह मांगने के लिए मजबूर हैं आप चुप रहने के लिए। और अगर आपने इनकी नकल करना सीखा भी तो इसमें एक वक्त लग जायगा और शायद आपकी नकल असल तक न भी पहुँच सके। मगर यह भी तो देखिये कि आप की चुप भी आपके लिए कितनी मुफीद चीज है। जो बच्चे मां से मांगा करते हैं मां उनको देने के लिए मांगने के इंतजार में रहती है। वह जानती है कि यह भूखे हो कर रोटी मांग लेते हैं लेकिन जो चुप रहते हैं उनके मुतल्लिक वह यह सोचा करती है कि ऐसा न हो यह कहीं भूखे रह जाय क्योंकि यह कह कर तो मांगेंगे ही नहीं इसलिए वह उनकी तमाम बातों को जानने की कोशिश किया करती है कि जिनको दूसरे कह कर बतलाते हैं। इसलिए आपकी मंजिल छोटी नहीं। आप इसी पर पक्के होते जाइए।

इस चमन में पैरवे बुलबुल हो या तलमीजे गुल।
या सरापा नाला बन जा या नवा पैदा न कर॥

अर्थात् इस वाटिका में या तो बुलबुल का शिष्य बन और या पुष्प का। या तो सिर से पाँव तक रोना बन जा, प्रार्थना या स्व

बन जा और या बिलकुल आवाज ही पैदा न कर याने चुप हो जा (पुष्प के समान)।

मैंने कहा कि आप अपने मंजिल पर डटे रहिए, आखिर मांगने वाले भी तो माँग कर चुप हो जाते हैं और आप पहिले ही उस चुप की मंजिल पर बैठे हैं। किसी ने क्या खूब लिखा है!

किस तरह दर्दे निहा को रूबरू तेरे कहूँ।
याद आती है मुझे जब कि हमादानी तेरी॥

जब कि तेरी सर्वज्ञता की तरफ ध्यान जाता है तो ज़ुबान अन्दर की पीड़ा बयान करने से चुप हो जाती है इसलिए कि जो कुछ हमें कहना है वह तू पहले ही जानता है। खैर अगर किसी के अन्दर की हालत कहने के लिए मजबूर करती है तो उसे कहने दीजिये चूंकि वह कहते हैं—

कहीं दस्ते सवाल दराज नहीं।
किसी और पे यूँ मुझे नाज नहीं॥
कोई तुझ सा गरीबनवाज नहीं।
तेरे दर के सिवा और दर न मिला॥

इसलिए उनकी हालत उनको मुबारक। लेकिन आप अपनी ही हालत में पक्के रहिए। खामोशी आपके लिए सब कुछ लाएगी क्योंकि जिसके सामने आप खामोश हैं उसके लिए आपकी खामोशी वही माने रखती है कि जिसको दूसरे बोल कर जाहिर करते हैं।

ईश्वर को मान कर सब्र करना तो एक बात है ही लेकिन जिन लोगों की नजर अभी तक वहाँ नहीं पहुँची उनके लिए भी सब्र एक अद्वितीय धन (Unique Wealth) है। वह भी इसकी वजह से अपने अशांत चित्त में शांति की किरण को देख सकेंगे कि जो शांति, आनन्द ईश्वर का अंश है और किसी दूसरी चीज का नहीं क्योंकि जीव और प्रकृति तो इस अंश से खाली हैं।

आर्यसमाज के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति सत्य है, जीव सत् चित्त है और ईश्वर सच्चिदानन्द है। वेदान्त के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति जड़ है और ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। गोया आनन्द का भंडार एक ही है, दो नहीं चाहे उसे अपनी आत्मा कहिए या ईश्वर का अंश। जो पदार्थों में आनन्द का अनुभव होता है वह चित्त वृत्ति के निरोध से पैदा होता है। गोया वह आनन्द भी अन्दर ही से आता है बाहर से नहीं, और अन्दर भी वह सब के साक्षी का प्रतिबिम्ब होता है कि जिसका साक्षी दूसरा न हो। सत्य नाश से रहित है और जगत के नाश का वह साक्षी है। अगर आप उस सत्य के नाश की कल्पना करें तो फिर उसके नाश का साक्षी कौन होगा? किसी चीज़ के होने और न होने का जिसको अनुभव होता है और जो हमेशा होने और न होने को देखता रहता है और अपने न होने को नहीं देख सकता वही साक्षी है। इसलिए नास्तिक चाहे उसको माने या न माने आनन्द का अंश उसे भी वहीं से मिलेगा। अगर कोई प्यासा पानी का गिलास पीकर प्यास बुझाता है तो भी प्यास जल ही से बुझती है और अगर एक नन्हे से बच्चे को कि जो प्यास से तो वाक़िफ़ है लेकिन पानी से नहीं उसको उसकी बेख़बरी में पानी पिलाया जाय तो प्यास उसकी पानी से ही बुझती है यद्यपि वह उससे वाक़िफ़ नहीं होता। सच्चे आस्तिक उसको मान कर उसकी तरफ़ दौड़ रहे हैं और पक्के नास्तिकों को वह अपना आप न मनवा कर भी अपनी ही तरफ़ खींच रहा है। इसलिए यह सत्य वह चीज़ है कि जो आस्तिक और नास्तिक दोनों के लिए खुशी का कारण है।

महात्मा ने कहा फिर ऐसी चीज़ पर मैं नाज़ क्यों न करूं?

"ऐ तबीबे जुम्ला इल्लतहाय मा"

(ऐ मेरी कुल बीमारियों के हकीम! तू खुश रहो, ज़िन्दा रहो।)

अन्दर से अपने सत्य पर नाज़ करते हुए और बाहर से अपनी

इज्ज और नम्रता का इजहार करते हुए महात्मा जी ने कहा कि मेरे पास सिर्फ यही चीज है कि जिसको मैंने बारह वर्ष में सीखा। ये इस इन्तजार में थे कि शायद वह ज्ञान की देवी इनको इनकी इस मंजिल के लिए कह देगी कि वाह! तुमने जो सीखा वह वही सीखा जो इन्सान को सीखना चाहिए था। लेकिन वह इनकी यह बात सुन कर ख़ुश होती हुई और कुछ न कहती हुई दूसरे महात्मा की तरफ़ मुतवज्जह हुई, तकने लगीं और यूँ कहने लगीं—कि आपको कितनी देर ब्रह्म विद्या (परमार्थ या रूहानियत) की तलाश में हुई और आप कब से जीवन के लक्ष्य को पाने के लिए इस तरह जंगल में घूम रहे हैं। आप के जाहिरी त्याग का कारण क्या है? आपने अपनी तमाम कोशिशों के नतीजे में क्या हासिल किया? सांसारिक पुरुष भी दुनिया में लगे हुए जिन्दगी के गुजरते हुए लमहों के साथ कुछ न कुछ इकट्ठा करते ही रहते हैं फिर जो कुछ आपने हासिल किया है मुझको भी दिखाइये।

दूसरे महात्मा ने कहा—माता जी! मुझे बीस वर्ष इस चक्र में लगे हुए हो गए हैं। मैंने जंगल के एकान्त स्थानों पर बैठ बैठ कर नफ़सकुशी (मन से लड़ाई) करके केवल एक ही बात सीखी है जिस पर मेरे जीवन की इमारत खड़ी है, जिसमें मेरे आनन्द का रहस्य मौजूद है, जो मेरा सर्वस्व है, जिसके लिए मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ और जिसको किसी चीज के लिए नहीं छोड़ सकता और वह केवल एक ही शब्द है जो कि मत्र नहीं बल्कि शुक्र, धन्यवाद है।

जीवन में जब दुःख की आँधी मेरे सामने चलने लगती है तो उस समय मैं बजाय शिकायत के शुक्रिया करता हूँ, प्रभू को धन्यवाद देता हूँ और उस शुक्रिया के आनन्द में मग्न होता हूँ। पिंजड़े में पड़े हुए पक्षी दूसरे मत्र करते हुए पक्षी से कह रहा था कि तू इस कदर ख़ामोश जरूर है। तू कहीं उनसे अच्छा है कि जो फड़फड़ा रहे हैं लेकिन तेरे चेहरे पर मुस्कराहट का नाम तक नहीं।

देख, तेरे सामने एक मैं हूँ जिसके चेहरे पर मुस्कराहट भी है और खामोशी भी। आखिर तू समझता है कि मेरी मुस्कराहट का कारण क्या है। मैं बिल्कुल खामोश नहीं बल्कि धन्यवाद का गीत अलाप रहा हूँ उसका कारण सिर्फ यह है कि मुझे इस पिंजरे में सिर्फ सख्ती ही नहीं, सिर्फ बर्दाश्त करना ही सिर्फ जब्र ही नहीं, बल्कि अच्छाई भी मालूम देती है। इस पिंजरे में अगर कठिनाइयाँ हैं; बाहर से अलहदगी है तो हजार आफतों से बचाव भी है। हम उन पक्षियों से कहीं अच्छे हैं कि जिनके परोबाल बेरहमी से नोचे जा रहे हैं और उनके पास बचाव की कोई सूरत नहीं। हमारी हालत अगर आजाद पक्षियों से बदतर है तो हिलाक होते हुए मारे जाते हुए पक्षियों से बेहतर है। इसलिए हमारे लिए यहाँ जो आराम के सामान मौजूद हैं उनके लिए जितना भी शुक्रिया करूँ कम है। मुझे इस बात की शिकायत नहीं कि मैं कैद हूँ। बल्कि इसका शुक्रिया कि मेरे परोबाल अभी तक यहाँ सलामत हैं और मैं शिकारी के बेरहम तीर का अभी तक निशाना नहीं बना। इस पक्षी को अकबर बादशाह के दरबार की वह लकीरें नजर आने लगीं कि जो बीरबल ने बादशाह के हुक्म की तामील में खींची थीं। बादशाह ने ख्वाह तख्ते पर खड़िया के टुकड़े से एक लकीर खींची और कहा कि इसे बिना छुए बड़ा और छोटा कर दिया जाय। लोग हैरान हुए और कहने लगे कि ये बातें तिलस्म, जादू (Magic) से सम्बन्ध रखती हैं वर्ना यह कहाँ सम्भव है कि लकीर को छुआ भी न जाय और बड़ा और छोटा भी कर दिया जाय। तो बादशाह ने कहा इसे मिटा कर छोटा करना और बढ़ा कर लम्बा करना तो बच्चा भी कर सकता है फिर आप लोगों की बुद्धिमत्ता क्या हुई। या तो चुपके से बैठे रहो या बिना छुए इसे बड़ा या छोटा करो। दरबार में सन्नाटे का आलम था। सबने मौन धारण किया हुआ था। बादशाह की नजर बार बार उस शख्स को ढूँढ रही थी कि जो इस बात को पूरा कर सके। बीरबल देख रहे

बादशाहरे खामोशी तोड़ते हुए बीरबल ने कहा—हजूर! क्या हुक्म है? इसे बड़ा किया जाय या छोटा? कहा कि इसे बड़ा कर दो लेकिन याद रहे लाइन के किसी हिस्से को हाथ न लगे। बीरबल ने उस लकीर के करीब ही चाक के टुकड़े से एक छोटी सी लाइन खींच दी। बस फिर क्या था? पहली लाइन को बड़ाई का खिताब मिल ही गया। सब उसको बड़ा बड़ा कहने लगे। जो चीज कि पहले बड़ी और छोटी कुछ भी नहीं थी वह इस छोटी लाइन के सामने आते ही बड़ी बन गई। बीरबल ने कहा कि हजूर। हुक्म की तामील मे लाइन बड़ी कर दी गई और हाथ से छुआ तक न गया। बादशाह ने कहा अभी इन्तहान मुकम्मिल नहीं हुआ और तुम्हे कामयाबी का तमग़ा (Medal) उस वक्त तक नहीं मिल सकेगा कि जब तक तुम इसे छोटा न कर दो। बीरबल ने कहा जो आज्ञा। और इतना कहते ही चाक के टुकड़े को कुछ इस अन्दाज से चलाया कि पहिली लकीर के साथ एक और बड़ी लकीर खिच गई। बस फिर क्या था उसको देखते ही वह पहली लकीर छोटी हो गई। हैरानी यह थी कि पहिली लकीर अपनी जगह ज्यूँ कि त्यूँ थी और इधर उधर की लकीरो को देखते हुए छोटी और बड़ी एक ही वक्त पर बन रही थी। बड़ी लकीर खींच कर बीरबल ने कहा कि हजूर। अब हुक्म की तामील में यह छोटी कर दी गई। बादशाह बहुत ख़ुश हुए और प्रजा हैरान होकर देख रही थी कि यह मामला क्या है कि बादशाह की खिची हुई लाइन तो ज्यूँ कि त्यूँ पड़ी है और बीरबल की खिची लकीर उसे बड़ा और छोटा किए जा रही हैं। छोटी लाइन की अपेक्षा से वह लाइन की अपेक्षा से वह लाइन बड़ी बन रही थी और बड़ी की अपेक्षा मे छोटी और दोनों को छोड़ देने पर वह लाइन न बड़ी थी और न छोटी।

इसी तरह इस माया की तख्ती पर अकबर याने बड़ा (ईश्वर) की खींची हुई लाइन यह मनुष्य या मनुष्य का हृदय है लेकिन बुद्धि

रूपी मंत्री की खींची हुई निस्बत की लकीरें (Lines) इसे बड़ा और छोटा किए जा रही हैं। छोटों को देख कर बड़े और बड़ों को देख कर छोटे हुए जा रहे हैं। अगर दोनों की तरफ देखना छोड़ दिया जाय तो अपनी हालत अपेक्षा से पाक हो जाती है। इस दशा में न ग़म ही रहता है और न खुशी, न उन्नति, न अवनति, न बड़ाई और न छोटाई, घटना और न बढ़ना बल्कि कुछ एक ऐसी हालत हो जाती है जिसके सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव का शेर सामने आ रहा है।

दिले दारम कि दरवे ग़म न गुंजद।
चिह जाय ग़म की शादी हम न गुंजद॥

अर्थात् मेरा वह दिल है कि जिसमें ग़म नहीं समा सकता ग़म तो क्या उसमें ख़ुशी भी नहीं समा सकती क्योंकि अगर ख़ुशी आयगी तो अव्वल तो ग़म की अपेक्षा से आयगी और सम्भव है वहां ख़ुशी की इच्छा इस ख़ुशी को ग़म की शक्ल में बदल दे और या यह ख़ुशी जाकर ग़म बन जाये। इसलिए जब से मैंने ख़ुशी से नाता तोड़ लिया है, ग़म से रिश्ता ख़ुद ही तो टूट गया।

ख़ुशी की तलाश ग़म के लिए ख़ुद एक निमंत्रण है। जब ख़ुशी की इच्छा नहीं तो ग़म के आमद की चिन्ता नहीं। फिर वह हालत है जो ग़म और ख़ुशी दोनों से ऊपर आनंद और परमानंद की है।

पक्षी ने उस स्वाभाग पक्षी से कहा कि अकबर बादशाह के लाड़लों की तरह आज मैं इस पिंजरे में बैठा हुआ ही शुक्रिया और धन्यवाद का पाठ सीख रहा हूं। अगर आज़ाद पक्षियों से मेरी हालत ख़राब है तो उन पक्षियों से कहीं अच्छी है कि जो जाल में फड़फड़ा रहे हैं या शिकारी के तीर का निशाना बन रहे हैं। मैं क़ैद तो ज़रूर हूं लेकिन शुक्रगुज़ार इसलिए हूं कि मेरी हालत से बुरी हालत भी दुनिया में मौजूद है। अगर मैं उसी हालत में होता तो क्या करता? जब मैं इसी हालत को नहीं टाल सकता तो उस हालत को कैसे टालता। इसलिए—

शुक्रिया शेवा है मेरा उसमें मैं मसरूफ हूँ।
शिकवा हाए ग़म सुनाने की मुझे फ़ुरसत नहीं॥

मेरे श्री गुरुदेव भगवान के पास एक आदमी आए, इन्होंने कहा—हुजूर ! मैं बेकार हूँ। तो फरमाने लगे कि शुक्र कर कि बीमार नहीं। अगर बेकारी के साथ बीमार भी होता तो क्या करता ? जब बेकार रह कर ही उसके साथ नहीं लड़ सकता तो फिर बीमार होकर क्या लड़ता ? शुक्रिया में तुझको यह फ़ायदा है कि काम पर लगने के बाद जिस ख़ुशी की तुझको तलाश है वह शुक्रिया की बदौलत तुझको बेकारी में भी मिलने लगेगी और जब तू शान्त होगा तो काम ख़ुद तेरी तरफ दौड़ेंगे। चूंकि दुःख को कम करना और सुख को बढ़ाना मनुष्य का कर्त्तव्य है इसलिए तू शुक्रिया से अपने दुःख को कम कर और जब तू उसकी दी हुई हालत में ख़ुश होगा तो तेरी ज़ाहिरी हालत ख़ुद ही सुधर जायगी। तू चैतन्य होकर जड़ का मोहताज न हो बल्कि हर अवस्था को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ बदल दे। दुःख को सुख कर डाल, ग़म को आराम बना ले, अपनी दुनिया आप पैदा कर अगर ज़िन्दा ग़ै है तो जड़ पदार्थों को बदनाम न कर, तू ख़ुद इनसे ग़म लेकर इनको दुखदाई बना रहा है। तेरी इच्छा के प्रतिकूल होने से ये दुःखरूप बनते हैं। तू इनके लिये अपनी ऐसी चाह पैदा न कर। अगर देना है तो इनको आराम का रितात्र दे वर्ना बदनाम न कर। फूल के खिलने में एक तरफ की ख़ुशी देख और मुर्झाने में आयन्दा बहार का इन्तज़ार कर। प्याले के बनने में उसके बनने की ख़ुशी देख और उसके शिकस्त में (टूटने में) नई शक्ल का इन्तज़ार कर। तू लाइन को उस तरह रख कि जिसमें तेरी लाइन बड़ी बनती रहे न कि जिससे तू दुःखी होता रहे।

तू अपनी हालत में ख़ुशी भर ले। इसी को बेहतर समझ और शुक्रिया कर कि तुझे बग़ैर किसी मेहनत के यह सब कुछ दिया

गया है। तू अपने दुःख को सुख इसलिए बना कि उससे बड़ा दुःख भी दुनिया में मौजूद है और सुख की निस्बत से अपने दुःख को इसलिए न बढ़ा कि उस सुख ने ही तुझको यह दुख दिया।

एक पक्षी को किसी ने पिंजरे में क़ैद कर दिया। वह रोने लगा, चिल्लाने लगा। लेकिन न मालूम क्या ख्याल आया, वह एकदम हँसने लगा और लगातार गाने लगा—पकड़ने वाले को उसके रोने तक तो कोई हैरानी न थी, लेकिन उसे हँसते देख कर पूछे बग़ैर न रह सका कि तुमको इस पिंजरे में क्या मिल गया है जो इस तरह ख़ुश हो रहे हो और गा रहे हो? उसने कहा—

रिन्दे ख़राब हाल को ज़ाहिद न छेड़ तू।
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू॥

उसने कहा कि तुम पागल हो जो इस प्रकार हँस रहे हो वर्ना पिंजरे में हँसने का सामान ही क्या है? पक्षी ने कहा "रोने की कौनसी बात है?" शिकारी—चूँकि तुम क़ैद कर लिये गये हो, तुम्हारी आज़ादी, तुम्हारा बाग़, तुम्हारा घोंसला, तुम्हारे उड़ने और चहचहाने की ख़ुशियाँ तुमसे छीन ली गई हैं। इसलिये तुम्हारे रोने का कारण ज़ाहिर ही है।

पक्षी :—कौनसा बाग़? कैसी आज़ादी? कहाँ का उड़ना?

शिकारी :—क्या भूल गये?

पक्षी: —तो तुम याद दिला दो।

शिकारी :—तो सुनो वह बाग़ कि जिसमें तुम्हारे जिस्म के फूल थे, वह वृक्ष कि जिसमें तुम्हारा घोंसला था, वह आज़ादी कि जिससे तुम अपनी इच्छा के मुताबिक़ उड़ते थे।

पक्षी—(कुछ सोच कर) :—हाँ, याद आ गया। वह कल जो स्वप्न आया था और स्वप्न में बाग़, घोंसला और आज़ादी को देखा था।

शिकारी :—कुछ होश की बात कर। स्वप्न कैसा? वह तो जागृति थी और वह एक सच चीज थी।

पक्षीः—(क़हक़हा लगा कर) अगर सत्य होते तो जाते क्यों और स्वप्न न होते तो नष्ट क्यों हो जाते?
स्वप्न की सृष्टि और बीते हुए समय की दुनिया दोनों बराबर हैं। स्वप्न इसलिए स्वप्न है कि जाग कर नहीं रहा। कल का वर्त्तमान इसलिये स्वप्न है कि व्यतीत होने पर नहीं रहा। अगर वह स्वप्न था तो उसको जाना ही था। अगर वह गुजरा हुआ वक्त था तो भी वर्त्तमान से उसका सम्बन्ध नहीं। अगर वह असलियत थी तो मेरे पास, न रहने के कारण स्वप्न बन गई। मेरी जागृति मेरे सामने है, मेरा वर्त्तमान मेरे सामने है, मेरी छोटी सी दुनिया मेरे सामने है। जो दुनिया व्यतीत हो गयी, मुझे याद नहीं। जो सामने है वह बुरा नहीं। अब मैं कैद इसलिए नहीं कि वाटिका को भूल चुका हूँ। अब जो मेरे सामने है वह हर अपेक्षा से पाक है। मैं परतंत्र इसलिए नहीं कि स्वतंत्रता की इच्छा नहीं करता, और क़ैद इसलिए नहीं कि आजादी को नहीं चाहता। इसलिए जहाँ बैठा हूँ वह अवस्था मेरे प्रतिकूल नहीं। हज़ार शुक्र कि बाग की याद मुझे सता नहीं रहा है। हज़ार शुक्र कि इससे तंग पिंजरे में क़ैद नहीं। हज़ार शुक्र कि जिन्दा हूँ।

नग़मा हाए ग़म को भी ऐ दिल ग़नीमत जानिये
बेसदा हो जाएगा यह साज़ हस्ती एक दिन

और इतना कह कर वह पक्षी कुछ इस तरह गाने लगा—"तमाम दुनिया की राहतों से खुशी दिलों की कहीं बढ़ी है। मैं उनके गुलशन में आज बैठा उसकी बू से मॅहक रहा हूँ।" शुक्र! हज़ार शुक्र!! मैं इससे बुरी हालत में नहीं हूँ। शुक्र! हजार शुक्र!! मेरी हालत हज़ारों से अच्छी है। यह कहता हुआ मगन हो गया।

शिकारी को पक्षी की हालत देख कर ईर्ष्या पैदा हो गई। काश, मैं भी ऐसा पक्षी बन सकता। वह भी मुसीबतजदा था, दुःखी था उसने भी पक्षी की मिसाल पर चढ़ कर अपनी मौजूदा अवस्था में शुक्र करना शुरू किया और समझा कि अगर इससे भी नीचे गिरा दिया गया होता तो क्या होता। अगर हज़ारों से मेरी हालत बुरी है तो लाखों से अच्छी भी है।

दूसरे महात्मा ने कहा कि माताजी मुझे इस शुक्रिया से कितना सुख मिल रहा है कि दुःख मेरे पास आते ही भागने लगता है और यह भी देखा है कि शुक्र से नेमत, ऐश्वर्य या सम्पत्ति बढ़ती भी है।

किसी आदमी के घर दो मेहमान गये। उसने दोनों के आगे थाल रखे, तरह तरह की चीजें बनाईं, स्वादिष्ट भोजनों से मेहमानों को प्रसन्न करना चाहा। इत्तिफाक़ से दाल में नमक न पड़ा। उस समय तो मेहमान ज्यों-त्यों करके खा ही गये लेकिन जब बाहर निकले तो लोगों ने पूछा—क्योंजी, इतने बड़े अतिथि भक्त के घर जाकर क्या-क्या खाया? इसके जवाब में एक बोले कि खाना क्या था, दाल में नमक ही न था। दूसरे ने तरह तरह के लज़ीज़ और स्वादिष्ट भोजनों का जिक्र किया लेकिन दाल में नमक के न होने का कोई जिक्र ही न था। इन दोनों की आवाज़ हवा की तरह सारे शहर में फैल गई। जब अतिथि-भक्त रास्ते में लोगों से मिले तो एक दल ने शिकायत की—क्योंजी! क्या इसी का नाम मेहमान निवाजी अतिथि-भक्ति है? क्या इसे ही अतिथि-सत्कार कहा जाता है कि दाल में नमक तक भी न डाला। (गृहस्थाश्रम (II.८१)) इस आवाज़

को सुनता सुनता घबरा गया। मारे शर्म के मुंह नीचे किए जा ही रहा था कि दूसरे दल ने कहना शुरू किया—"क्यों साहब! हमें भी तो कभी ऐसी चीजें खिलाइए जो कि आपने अपने मेहमान को खिलाईं। अतिथि-भक्त चौकन्ना हुआ और ऐसी बातों को सुनता-सुनता घर लौट आया। आते ही दोनों मेहमानों को दो पत्र लिखे। अव्वल उसको कि जिसने स्वादिष्ट पदार्थों का जिक्र किया था और दाल में नमक न होने का नहीं। आपने कृपा की जो मेरे घर आये। आपके पधारने से मेरी इज्जत दुगुनी हो गई। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप आइंदा इसी तरह इज्जत अफजाई करते रहेंगे, मान बढ़ाते रहेंगे। यह घर हमेशा के लिये आपका है। आप जब भी चाहें तशरीफ़ ला सकते हैं। आपकी हमेशा राह देखने वाला आपका वही—

दूसरे के नाम भी पत्र लिखा—मेरे मेहरबान प्रिय मेहमान। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप आइन्दा मेरे घर आने की तक़लीफ़ न करेंगे। क्योंकि आपको यहाँ कोई आराम न मिल सका। केवल एक दाल मिली वह भी बगैर नमक की—आपका वही पुराना खिद्मत न कर सकने वाला।

भगवान की दी हुई हजार चीजों का शुक्रिया न करना और एक चीज की न होने की शिकायत करना क्या यह भी शर्ते इन्साफ़ है? इससे तो पहली चीजें भी छिन जाने का डर है। और जहाँ हजार चीज के शुक्रिया हैं, एक चीज की शिकायत नहीं वहाँ और लाख चीज आने की उम्मीद है।

माता जी! मुझे शुक्रिया में इतना आनन्द आया कि जो बाकी सब चीजों से बढ़ कर है। आशीर्वाद दीजिये कि इस मञ्जिल में क़ायम रह सकूँ।

एक महात्मा बचपन में ही एक समुद्र के किनारे आ बैठे। भगवान ने अपनी असीम कृपा से समुद्र का खारी जल मीठा कर दिया और एक अनार रोजाना उनके लिए तैयार होकर आने लगा।

अनार खाकर और जल पीकर वह दिन भर भगवान को याद किया करते थे। इसी तरह १०० वर्ष व्यतीत हो गए। भगवान् से प्रार्थना की कि अब मुझे उठा लीजिए। मेरा शरीर जीर्ण हो गया। भगवान की तरफ़ से स्वीकृति मिली और महात्मा भगवान के पास पहुँचा दिए गये। प्रभू ने आज्ञा की—"यह मेरा प्रिय भक्त है। इसको सर्वोत्तम स्वर्ग दो।" इतना सुन कर महात्मा ने कहा" हम पर कौन सा अहसान हुआ, हमने भी तो सौ साल तप किया था।" भगवान ने देवताओं को आज्ञा दी कि इसे वापस ले आओ। यह दया का अधिकारी नहीं। यह हिसाब गिन कर लेना चाहता है। अगर इसे स्वर्ग का मिलना मेरा अहसान नहीं, मेरी दया नहीं तो इसके कर्म का फल है और इसके ख़याल में हिसाब से यह चीज़ इसको मिल रही है। अच्छा, इसे उठा कर उसी शरीर रूपी पिंजरे में फेंक दो और उससे कहो कि मेरे अहसानात कि जिनका इसने कतई शुक्रिया नहीं किया और उन्हें अपनी मेहनत का परिणाम समझा पहले उनको कीमत अदा कर ले फिर इसे कोई और चीज़ दी जावेगी। इससे कह दो कि मैंने इसे ज़मीन दी, आसमान दिया, हवा दी, सूर्य और चांद दिये। इसकी परवरिश के लिये दो दूध की नहरें जारी. तमाम संसार के चक्र के चलने से इसको गिज़ा मिली कि जिस पर प्रकृति (Nature) की कुल ताकतें खत्म हो चुकी थीं। मैंने आंख, कान, ज़ुबान, दिल और दिमाग वगैरह दिए, समुद्र के खारे पानी को मीठा किया और रोज़ाना इसको एक अनार दिया और इसने इन्हीं मेरी तमाम ताकतों के सहारे मेरी ही दी हुई ज़ुबान से मेरा नाम लिया। अगर इन मेरे अहसानात में से कोई भी एक वस्तु इसे न मिलती तो फिर यह मेरा नाम कैसे लेता? अच्छा, एक तरफ़ इसकी तपस्या की कीमत डालो और दूसरी तरफ़ हमारे अहसानात की और अब यह मेरे अहसानात की कीमत अदा कर ले तो उसके बाद इसको इसकी तपस्या

का ऐवज़ दिया जाय। जब हिसाब किताब हुआ तो उसकी सौ साल की इबादत (तपस्या) एक आँख की क़ीमत अदा कर सकी जिस पर बाकी कृपायें बनी रहीं। भगवान ने कहा इसे उसी पिंजरे में फेंक दो और क़र्ज उतारने दो।

महात्मा चिल्ला कर चरणों पर गिर गए और कहा आह! किस समुद्र मे फेंका जा रहा हूँ जिसका वारापार ही नहीं। इसलिए प्रभो दया! दया!! दया!!! शुक्र। लाख शुक्र।—कि तूने मुझे यह नेमतें दीं कि जिनमें मैं तेरी याद कर रहा हूँ, ऋण का उतरना तो इसलिए मुश्किल है कि तेरे एक अहसान का बदला चुकाते तेरे और लाखों अहसान सर पर चढ़े जाते हैं। इस पर भगवान ने कहा कि यह मेरी दी हुई चीज़ों का शुक्रिया करता है, हिसाब किताब नहीं करता, इसे और बड़ा स्वर्ग दिया जाय।

दूसरे महात्मा ने उस ज्ञान की देवी से कहा कि यह शुक्रिया ही मेरी जान, मेरा प्राण, और मेरे जीवन का आधार है। मैं इससे हर आने वाले दुःख को कम कर लेता हूँ और इसमें खुशी की किरण को देखता हूँ। मेरे अन्दर और बाहर की नेमतें बढ़ती ही जाती हैं, दिल में मेरे खुशी है, इर्द गिर्द सामान मेरे ख़ुशी में नाच रहे हैं इसलिए—

अगर हर मरे मूए मन गरदद ज़बाने।
ने आरम गौहरे शुक्रे तो सुफ्तन॥

अगर मेरे शरीर का हर रोम ज़ुबान बन जाय तो भी तेरे शुक्रिये के मोती नहीं पिरो सकता।

महात्मा ने यह सब बातें कर के उस ज्ञान की देवी की तरफ देखा और दिल ही दिल में सोचा कि पूर्णता का प्रशस्तिपत्र (Certificate of Perfection) मुझी को मिलेगा। सब वाला तो दूसरा नम्बर देकर ही छोड़ दिया जायगा और जब माताजी को कुछ और भी मुसकराते हुए देखा तो उम्मीद और भी बढ़ गई

लेकिन उस ज्ञान की देवी ने वाह! क्या खूब! कहते हुए तीसरे महात्मा की तरफ तवज्जुह की और ये बेचारे पूर्णता के प्रशस्तिपत्र (Certificate of Perfection) के इन्तज़ार में ही बैठे रहे। 'वाह खूब' को चाहे सार्टिफिकेट समझें या कुछ और।

तीसरे से कहा—आपको कितने वर्ष महात्मा बने हुए? आप कब से इस जंगल में भ्रमण कर रहे हैं और फिर जंगल की कठिन तपस्याओं में रह कर आपने क्या किया? मुझे आशा है कि आप बताने में संकोच न करेंगे। जिस प्रकार पहले आपके दो साथियों ने अपने अपने अनुभव बताए उसी तरह आप भी इनको और मुझको सुनने से वंचित न रखें। आप रूहानी बातें करने वालों में से इस वक्त आखिरी हैं। मुझे आपका अनुभव सुनने का शौक बढ़ रहा है। मेरी शरीर की पीड़ायें बहुत कम हो चुकी हैं। बल्कि मैं तफरीचन अच्छी भी हो गई हूँ। मेरा शरीर इतनी देर तक बग़ैर मन के रहा और मेरा मन भगवान् से जुड़ा रहा। किसी का जिक्र करते रहना उसी से लगे रहने के बराबर होता है। फिर भगवच्चिन्तन भला किस सुख से कम है? शरीर की पीड़ा तो इसलिए कम हो गई कि मन उसमें न था और मन इसलिए दुःखी न रहा कि वह शरीर का सम्बन्ध छोड़ कर भगवान् में जुड़ गया। जब इस मन को वह मनचोर या चितचोर (या माखनचोर) ले लेता है या उसके सुपुर्द कर दिया जाता है तो उस संयोग में तो उसे सिवा आराम के कुछ मिल नहीं सकता। रहीं शरीर और जगत की व्याधियाँ, उनका अनुभव ही किस को होगा जब कि अनुभव करने वाला वहाँ मौजूद नहीं। आपके सामने दीवार पर घड़ी टँगी है और टिक टिक का आवाज़ लगातार आ रही है लेकिन आप किसी खास ध्यान में मग्न हैं। अब घड़ी की टिकटिक हवा की लहरों के साथ आवाज़ को आपके कानों तक पहुँचा रही है लेकिन आप उसको

सुन नहीं रहे उसका कारण सिर्फ यही है कि आप दिल को किसी और चीज को दिए बैठे हैं। जब तक मन का सम्बन्ध इन्द्रियों के साथ न हो, इन्द्रियों को किसी चीज का अनुभव नहीं हो सकता। फिर अगर इस मन को कोई चुरा ले या यह खुद ही किसी को अपने आप सौंप दे तो बाकी बातों का अनुभव किस को होगा ?

गोप कन्या :—मां ! घर मे अन्धेरा हो गया।

मां—बेटी। दीपक जला ला न।

बेटी—दीपक किस चीज से जलाया जाय ?

मां—उन्हीं पत्थरों को टकरा कर कि जिनसे रोज़ जलाया करती हो।

बेटी—लेकिन मां ! अन्धकार को दूर करने के सामान भी तो अन्धकार मे पड़े हुए हैं। उनको किस प्रकार से ढूंढा जाये। आखिर उनको ढूढ़ने के लिए भी तो रोशनी की जरूरत है। जब तक प्रकाश न मिल जाये तब तक वह नहीं मिल सकते। और जब तक वह न मिलें प्रकाश नहीं मिल सकता।

मां हैरान हो गई। कितनी चतुराई की बात। आखिर लड़की सच ही तो कहती है कि अन्धकार दूर करने के सामान को ढूढ़ने के लिये भी प्रकाश की ज़रूरत है।

मां—तो फिर क्या किया जाय ? आखिर रोशनी किये बग़ैर काम नहीं चलेगा।

बेटी—करना ही क्या है। किसी रोशन घर को ढूंढ़ा जाये और वहाँ से प्रकाश लाकर अपने घर में दीपक जलाया जाय। इत्तिफ़ाक से एक रुई की बत्ती पास ही पड़ी थी, तेल में भीगी हुई थी। लड़की ने उसे उठा लिया।

मां—कहाँ से अपना दीपक जला कर लाओगी ?

बेटी—वह सामने से। वह दूर जो घर नज़र आ रहा है।

मां—लेकिन नजदीक वाले घरों से रोशनी क्यों नहीं लाती ?

बेटी—इन सब घरों की रोशनी बुझने वाली है। यह दीपक देखते देखते बुझ जाते हैं मैं किसी ऐसे घर का प्रकाश चाहती हूँ कि जो हमारी रात को आसानी से काट दे। इस क्षण क्षण में बुझने वाली रोशनी को लेकर मैं क्या करूंगी ?

मां—बेटी ! तो उस दूर घरवाले प्रकाश में क्या विशेषता है ?

बेटी—सिर्फ यही कि वह प्रकाश हमारी रात को आसानी से कटवा सकेगा। आखिर मां वह कृष्ण के घर का प्रकाश है जो हर प्रकार के अन्धकार को मिटा सकता है। सांसारिक खुशियाँ क्षण-भंगुर हैं। उनसे जलाया हुआ मन का दीपक ज्यादा देर तक नहीं जल सकता। लेकिन कृष्ण के घर का जला दीपक यानी ब्रह्म में मन की स्थिति होने के पश्चात् मन का दीपक कभी नहीं बुझ सकता। न अज्ञान ही पास आ सकता है. और न कोई कष्ट ही। इसलिये मां मैं तो उसी घर से प्रकाश लाऊंगी।

मां—(झिड़क कर) जल्दी कर। बातें बना रही है। जा कहीं से भी ला। लेकिन ला तो सही।

लड़की आगे कदम बढ़ाती है। मां फिर आवाज देकर पूछती है। बेटी ! इतना तो बता कि उस पार तक पहुँचने के लिए तेरे पास कौनसा प्रकाश है। आखिर रास्ते में भी तो अन्धकार है।

बेटी—मां ! उस घर के दीपक की जो किरणें बाहर निकल रही हैं उन्हीं किरणों के सहारे मैं वहाँ पहुँच जाऊंगी। जैसे सूर्य हमारे नेत्रों को अपना प्रकाश देकर अपने आप को दिख-लाता है उसी प्रकार कृष्ण का दीपक अपनी रोशनी को मुझ तक पहुँचा कर मुझे अपनी ओर खींच लेगा और मैं

रास्ते की ठोकरों से बचती रहूँगी। मुझे मार्ग में कोई बाधा सामने न आवेगी।

लड़की इतना कह कर आगे क़दम बढ़ाती है कि घर का अन्धकार मुबारक है और अन्धकार का दूर करने के सामानों का न मिलना और भी मुबारक है कि आज मुझे तेरे घर से रोशनी लेने की ज़रूरत पड़ी। दुनिया के बुझने वाले दीपक और भी मुबारक हैं कि जो मुझे रास्ते में न रोक सके।

तुनकबख़्शी को इस्तिग़ना से पैग़ामे ख़िजालत दे।
न हो मिन्नत कशे शबनम नगूँ जामो सबू कर ले॥

(अर्थात् यह शबनम (ओस) की बूँदा बाँदी को बड़ी बेपरवाही से शर्मिन्दगी का पैग़ाम दे। तू इनके पीछे मारा मारा न दौड़। बल्कि अपने प्याले को उल्टा कर ले। अर्थात् मन की तृप्ति संसार की खुशियों से नहीं हो सकता। इसलिए अपने मन को मुँह फेर कर उसकी तरफ कर कि जो तेरे प्याले को भर सके।)

न तो हम अन्धकार को त्याग करने की इच्छा को त्याग सके और न कहीं इस इच्छा की पूर्ति होते देखी। इसलिए हम हैं और हमारी इच्छा। तू है और तेरा चमकता हुआ दीपक। जिस तरह यह मेरे हाथ की बत्ती बुझी हुई है उसी तरह मेरे मन की वृत्ति की बत्ती भी बुझी हुई है। ऐ प्रकाश के पुञ्ज! ऐ सौन्दर्य के प्राण!! मैं आज तुझसे दोनों क़िस्म की रोशनी लेने आ रही हूँ और यह भी तेरी ही रोशनी के सहारे तुझ तक पहुँचने की उम्मीद कर रही हूँ। आज दिन भर गुज़र गया तेरे दर्शन न हुए। आँखें तुझे ढूँढती रहीं। हर चीज़ को देखती रहीं तुझे देखने के लिए। हर तरफ़ दौड़ती रही तुझे ढूँढने के लिए। अश्रुओं की धारा बहाती रही तेरे गले में मोतियों का हार पहनाने के लिये। लोग समझते रहे मैं व्यावहारिक चीज़ें ढूँढ रही हूँ। सांसारिक वस्तुओं का

मुझे तलाश है। शायद तू उनको लेते देखता या पास से गुज़रता नज़र आ जाए।

पत्ती के परों की सरसराहट और पत्तों की हिलने की हल्की सी आवाज़ मेरे मन को सशङ्कित करती थी कि यह कहीं तेरे पीताम्बर की सरसराहट तो नहीं है। कोयल की मधुर आवाज़ों पर तेरी वंशी की ध्वनि का शक होता था। दिन भर खाती, पीती, चलती, फिरती रही—सिर्फ़ तेरे लिए और तेरे दर्शन के लिए। जब से तेरे दिल में तेरा प्रतिबिम्ब उतरा है मेरे जीवन की क्रियाओं का रंग बदल गया है। मैं खाती हूँ जीने के लिए, और जीती हूँ तुझे देखने के लिए। मेरी कुल क्रियाओं का लक्ष्य (मक़सद) केवल तेरे दर्शन हैं और तुझे देखना कि जिसे देख कर कामनाएँ तो एक तरफ़; मोक्ष और उसकी प्राप्ति की इच्छाएँ भी नहीं रहतीं। मैं तुझे देख कर वहां पहुँच जाती हूँ कि जहाँ कोई पहुँच नहीं सकता। सांसारिक वासनाएँ और इच्छाएँ वहां नहीं जा सकती हैं। यह तेरे दिए हुए प्रेम का नतीजा है। तेरा प्रेम तुझे देखे बग़ैर नहीं मिल सकता और तुझे देख कर कोई दूसरी चीज़ मन में नहीं रह सकती। मुझे तो दिन के प्रकाश से यह अन्धेरा ही अच्छा कि जिसने तेरे घर का मार्ग और भी आसान कर दिया।

लड़की यह कहती हुई आगे बढ़ती ही जा रही थी और उसके मन के सामने एक ही चीज़ थी और वह बालकृष्ण की तस्वीर। उसको अपने घर से वहां पहुँचते यह भी पता न चला कि रास्ते में क्या था और कितना समय लगा। वह एक ही ध्यान में लगे हुए आगे बढ़ती गई। आख़िर अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच ही गई। वहां जाकर देखा कि एक तरफ़ दीपक जल रहा है और दूसरी तरफ़ मैया की गोद में बैठे हुए भगवान कृष्ण अपनी मीठी-मीठी बातों से मैया यशोदा और नन्द का दिल बहला रहे हैं।

दूसरे देखने वालों को बालकृष्ण चाहे कुछ भी नजर आये लेकिन इस नन्हीं सी देवी के लिए तो वह सिवाय भगवान के कुछ भी न थे। भगवान की तारीफ यह है कि जो हमारे मन को इस तरह पकड़ते हैं कि जिसको न तो हम ही छुड़ा सकें और न वह छोड़ कर किसी दूसरी चीज के सुपुर्द करें और मन को यही मालूम होता रहे कि यह वही चीज है कि जिसकी तलाश में मन भटक रहा था। जिस प्रकार साफ लोहे को चुम्बक घसीट लेता है या पतंगे को दीपक अपनी पहिचान दे देता है उसी प्रकार इस गोप-कन्या के मन में एक आकर्षण, एक टिकटिकी, एक ज्ञान की परिपक्वता और अपने ध्येय की पहिचान स्वभावतः हो गई। किसी दलील, युक्ति की जरूरत न थी कि यह भगवान हैं या नहीं, या इन के अलावा भी जिन्दगी का कोई लक्ष्य है। विश्वास को कोई तोड़ने वाला न था क्योंकि पवित्र मन की स्वाभाविक चेष्टा थी। यह प्रवृत्ति, पहिचान और अनुभव (यह Inclination, यह Recognition, यह Realization) इसके लिए इतना सरल था कि यह इसे फौरन हो होने लगा। इस पहिचान के लिए किसी दूसरी गवाही की जरूरत न थी। इसमें बुद्धि का दखल न था और यह अपने ध्येय तक पहुँच चुकी थी। किसी को यह समझा सकती या न लेकिन यह खुद समझ चुकी थी। यह अपनी बुद्धि को भी सन्तुष्ट कर सकती या न लेकिन यह खुद संतुष्ट थी। यह भगवान के पास थी और भगवान इसके पास।

इतने में इसने अपने बत्ती दीपक को ज्वाला (प्रकाश) में रख दी और अपने मन की वृत्ति, पूर्ण सौन्दर्य के प्रकाश के अर्पण कर दी। अब विचित्र बात यह है कि इधर तो बत्ती जल रही है और उधर वृत्ति प्रकाशमय हो रही है। अन्धकार बाहर है न अन्दर।

हर ज्ञान पे दीप सदा लशके।
मन मन्दिर योगिन के बन के॥

भय मोह उदय जो हृदय तिन के।
तम पुञ्ज वही नाशीहन के॥

अर्थात् जो उसके भक्तों के मन के मन्दिर में उसके प्रेम का दीपक जलने लगता है उसकी शक्ति यह होती है कि अगर भूल कर भी वहाँ भय, मोह, लोभ, अहंकार इत्यादि आ जाय तो उस अन्धकार को ही प्रकाश का पुंज इस तरह उड़ा देता है कि जैसे तेज हवा के सामने मच्छर अपने पाँव नहीं जमा सकते।

गोप—कन्या के मन में इस वक्त एक ही चीज थी और वह बालकृष्ण का ध्यान। इस आकार ने, इस रूप ने इस शक्ल ने, बाकी तमाम वृत्तियों को जो कि संसार सम्बन्धी थीं, कुचल डाला था। मन की वृत्ति एक ही रह गई थी और वह भी कृष्णार्पण हो चुकी थी। 'योगश्च चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् योग क्या है? चित्त की वृत्तियों का निरोध। लेकिन यहाँ तो और ही नक्शा था कि चित्तवृत्तियों का ही अत्यन्ताभाव हो गया था और जो सब वृत्तियों ने एक वृत्ति में अपना आप मिला दिया था। वह भी अब उसकी न रही थी बल्कि श्रीकृष्णार्पण हो चुकी थी।

एक मन था सो वह भी खो बैठे।
अच्छे खासे फकीर हो बैठे॥

लेकिन जब मन उसके पास था तो वह हर प्रकार दुःखी थी। अब मन दे चुकी है। हर तरह ख़ुश है। यह विचित्र रास्ता है कि जहाँ लेकर नहीं बल्कि देकर ख़ुशी होती है और फिर वह मन जो जगह जगह भटक कर पीड़ित हो रहा था ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुँच कर मग्न हो गया कि अब इसको वहाँ कोई सता नहीं सकता।

जब अर्जुन की रक्षा का भार भगवान ने अपने ऊपर लिया था तो उसे निश्चिन्त कर दिया था फिर जब मन को अपने पास लिया तो इसकी रक्षा कौन करे। इधर कन्या जल चुकी है, उधर मन

अपना आप खो रहा है। इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहिए या असम्प्रज्ञात। द्वैत के होते हुए भी द्वैत नहीं है। शरीर के होते हुये भी शरीर का भान नहीं है। यहाँ तक कि यह ख्याल भी नहीं कि मैं किसी को देख रही हूँ। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य एक हो रहे हैं।

ग़मो ग़ुस्सा ओ यास अन्दोहो हर मां
हवाए मुसर्रत उड़ा ले गई है ॥

जिस मंजिल पर योगियों को पहुँचना भी कठिन है वहाँ यह गोप-कन्या प्रेम के सहारे पहुँच चुकी है। प्राणों की हरकत भी तकरीबन बन्द पड़ती जाती है लेकिन प्रकृति के नियमों ने अपना असर दिखाना शुरू किया। बत्ती जल गई और हाथ को आग लग गई। प्रकृति के नियम जब अपना रंग दिखाने से नहीं रहते तो ऐसे नियमों ने भी अपना रंग दिखाना शुरू किया और वह यह था कि हाथ जल रहा है लेकिन वहाँ किसी को पता ही नहीं। इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है यदि क्लोरोफार्म आदि आपको इस मंजिल तक ले जाते हैं तो भगवान का दिया हुआ प्रेम इससे कहीं ऊँचा ही हो सकता है।

प्रकृति के नियम पुकार-पुकार कर कहने लगे "हम तुझे जला डालेंगे।" लेकिन ईश्वरीय नियम हँस-हँस कर कह रहे थे कि तुम्हारा असर मेरे प्यारों पर नहीं हो सकता। इसकी आँखें खुली थीं, धीमा सा श्वाँस चल रहा था। हाथ अभी जल रहा था लेकिन चेहरे की मुस्कराहट बदस्तूर थी। न तो हाथ ही को आग से हटाने की कल्पना थी और न मन को ही अपने भगवान से दूर करने की इच्छा। इतने में क्या देखते हैं कि ईश्वरीय लीला और तरह काम करने लगी। आख़िर होश में लाना ही था। बाकी काम जो लेने हुए। यह कन्या अष्टाङ्ग योग की उन तमाम मंजिलों को एक क्षण में पूरा कर चुकी थी कि जिन पर चलने के लिये हज़ारों वर्ष की ज़रूरत होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और

समाधि की मंज़िलों को इसने एक मिनट में काट लिया। इसका आसन वही था कि जिसमें यह खड़ी थी, इसके नियम संसार के नियमों से बहुत ऊँचे थे। मन की क्रिया के बन्द होते ही प्राणों की हरकत बन्द हो चुकी थी। एक ही को हृदय में धारण कर रखा था। इसकी मन, इन्द्रियां संसार से हट कर धारणा और ध्यान-मय हो रही थीं। इसकी बुद्धि समत्व को पहुँच चुकी थी। अर्थात् समाधि (सम + धी) हो चुकी थी। इसके लिये द्वैत और अद्वैत के झगड़े व्यर्थ थे। यह भय, शोक, मोह से बहुत ऊंची हो गई थी। प्रकृति का तमाम चमत्कार इसके आगे फीका पड़ चुका था। यह उस एक को मन में लेकर इतनी सतुष्ट हो चुकी थी कि इसे न तो कुछ पाना ही बाकी रह चुका था और न खाने की फ़िक्र।

आ गया आना जहाँ, पहुँचा वहाँ जाना जहाँ
अब नहीं आना न जाना काम क्या बाकी रहा?
डाल दो हथियार मेरी गाय पुख्ता अब हुई
लग गया पूरा निशाना काम क्या बाकी रहा?
लाख चौरासी के चक्कर से थका खोली कमर
अब रहा आराम पाना काम क्या बाकी रहा?

इस पूर्ण समाधि की दशा से उसको शरीर का होश दिलाने वाली यहां उसकी माँ आ पहुँची। वह इस ख्याल से आ गई कि इतनी देर होने पर लड़की वापस न आई। मालूम होता है यशोदा ने बातों में लगा लिया है। मैं हो चल कर उसे ले आऊँ। लेकिन आते ही उसके हाथ पाँव फूल गये। जिस्म में बिजली सी फिर गयी. सर घूमने लगा। क्या मेरी इकलौती बेटी का यह हाल? क्या इसको मृत्यु का स्थान यही था कि जहाँ से यह प्रकाश लेने आई थी। आह! मेरे नसीब! मैं इसे यहाँ न भेजती तो अच्छा था। देखो! हाथ जल रहा है और यह चुप खड़ी है। अगर इसमें प्राण होते तो क्या यह चिल्लाती न? हाय करे न करती? इतना कह कर

चिल्लाना शुरू किया—आह ! मेरी वह बेटी जो चिनगारी की जलन को भी सहन न कर सकती थी आज आग में अपना हाथ दिए खड़ी है और उफ तक भी नहीं करती। बेटी ! प्यारी बेटी !!

लेकिन इन तमाम बातों का लड़की पर कोई असर न था। जब आग की जलन ही उसे होश में न ला सकी तो माँ की बिलबिलाहट वहाँ क्या काम आती ? लेकिन इस चीख की आवाज को सुन कर नन्द बाबा घबराए, मैया यशोदा बालकृष्ण को रख कर दौड़ी, घर भर में कोहराम मच गया। आखिर क्या हुआ ? कौन चिल्ला रहा है ? नन्द बाबा मैया यशोदा को देख कर भगवान कृष्ण भी पीछे दौड़े कि हम भी देखें कि आखिर क्या हुआ ? सब लड़की को देख कर हैरान थे। बालकृष्ण के सामने से हटते ही कन्या की वृत्ति अपने स्थान से हट गई और घबराई हुई हालत में कृष्ण को इधर-उधर ढूंढने लगी। लेकिन जब कहीं पता न चला तो आखिर अपने शरीर में आ गई, वृत्ति मन में आ गई, मन शरीर में फैला और प्रकृति के नियमों के असर को अनुभव करने लगा। अब लड़की से न रहा गया, चिल्लाने लगी, रोने लगी—"हाय मेरा हाथ जल गया। मैं जल गई। मेरी बत्ती जल गई इत्यादि इत्यादि ?" मां इस दृश्य को देख कर बहुत हैरान हुई। भगवान को धन्यवाद दिया कि तेरी कृपा से लड़की बच गई। उससे न रहा गया। कन्या से पूछ ही बैठी कि अभी-अभी हाथ जल रहा था और तू चुप थी और अब हाथ को आग से निकाल लेने पर भी तू चिल्ला रही है।— आखिर इसका कारण ? लड़की क्या जवाब देती ? इतना कह कर चुप हो गई कि पहिले मुझे दर्द नहीं होता था और अब हो रहा है। लेकिन इतने में उसका हाथ जला देखने के लिए उसके मन को प्रकाशमय बनाने वाले कृष्ण सामने आकर पूछने लगे कि यह तुम्हारे हाथ को क्या हुआ ? कैसे जल गया ? वह कहने लगी। यह तेरे घर में मिला जख्म है। मुझे इससे प्रेम है। मुझे इस जलन

में भी आनन्द है। यह जलन मेरे दूर होने पर भी तेरी और तेरे घर की याद दिलाती रहेगी और अगर तुझे मुझको चिल्लाते देखना मंजूर नहीं है तो यूं ही मेरे सामने खड़ा रह फिर मैं एक वक्त में दो तरफ न देख सकूंगी। या तुझे देखूंगी या अपनी जलन को। लेकिन यह चितचोर बालकृष्ण एक तरफ मन को अपने हाथ में लेकर वापिस क्यों कर देता है?—शायद इसलिए कि मन को तेरे पास न रहने का महत्त्व पता लग जाय। लेकिन यह जरूर है कि तेरा वापस किया हुआ मन उससे जरूर अच्छा होता है कि जब तक यह तुझको दिया न गया था। क्योंकि यह वापस आकर तेरी याद और तुझ से मिलने की इच्छा को साथ लाता है। अब तू नेत्रों के शीशे से दिल में इस प्रकार उतर आया है कि जिस तरह मुझे तुझको पाना मुश्किल है उसी तरह तुझको मुझ से भागना। लेकिन मेरी इतनी प्रार्थना है कि अगर तू मुझे संसार की आग में जलता नहीं देखना चाहता तो अपनी प्रेमाग्नि में जलने का मुझे सौभाग्य दे। जिस तरह तेरे घर की जलन जलन होते हुए भी मुझे अप्रिय नहीं है उसी तरह तेरी दुनिया के दुःख-दुःख होते हुए भी मुझे अप्रिय नहीं हैं। मैं उनको तेरे दिए हुये समझ कर उनमें रहती हुई भी प्रसन्न रह सकूंगी।

इस प्रकार वह गोप-कन्या अपनी दोनों बत्तियों को जलाकर अपने घर वापस आ गई। बाहर की बत्ती से बाहर का अन्धकार दूर हो गया। अन्दर की बत्ती से अन्दर का। गीता के इस सिद्धान्त पर चलने लगी।

यत करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

अब यह खाती पीती, सोती जागती, चलती फिरती संसार के कार्य करती हुई भी भगवान से भिन्न न थी। या तो भगवान् को मन में रख कर वह तमाम कार्य किया करती थी और या भगवान ने

कार्य समझ कर उनको करती थी। इस तरह उसका कर्म, भक्ति और ज्ञान एक ही रहा था।

ज्ञान की देवी (सीताजी) ने कहा कि बेटा! जिस तरह वह गोप-कन्या आग में अपना हाथ रखती हुई भी भगवान् को अपना मन देकर उस दुःख से छूट गई थी उसी प्रकार तुम लोगों की भगवान् संबंधी बातों से मेरा शारीरिक कष्ट या तो रहा ही नहीं और या उसका पता ही। नहीं लग रहा है खैर, कुछ भी हो तुम उस सिलसिले को जारी रखो ताकि मुझे कष्ट न हो। अच्छा तो तुमको कितने वर्ष फ़कीर हुए हो गये?

महात्मा—सिर्फ़ चालीस वर्ष।।

माता—खूब। तो तुमने बहुत कुछ सीखा होगा। मेरी उत्सुकता सुनने को और बढ़ गई।

महात्मा—नहीं, आपके सामने तो मैं बालक के समान हूँ। सो अब का—luck या lucky (किस्मतवाला) हो रहा हूँ। लेकिन मुझे आपके सामने बात करने की हिम्मत नहीं होती।

माता—अपने अनुभव को छिपाने के लिए।

महात्मा—नहीं, इसलिए कि आपके सामने वह होगा ही क्या। (दिल ही दिल में)—मैं तो उस मंजिल पर पहुँच चुका हूँ कि जिसके आगे कोई दूसरी मंजिल ही नहीं है। मैं खुद अनुभव करता हूँ कि जहां मैं हूँ वही सबसे ऊँची हालत है। मैंने इससे बड़ी हालत आज तक देखी, सुनी और पढ़ी तक नहीं। Perfection Certificate पूर्ण होने का इनाम मुझको मिलेगा। यह मेरी नम्रता की बातें मेरी शान को और बढ़ा देंगी और माता जी कहेंगी कि

वाह। इतनी ऊँची मंजिल होते हुए भी यह इन्कसारी, यह आजिजी, यह नम्रता। अब तो पहिले दो महात्मा भी मुझे गुरु के समान समझेंगे। उनके अनुभव तो मेरे अनुभव के सामने यूं गुम हो जायेंगे कि जैसे सूर्य के प्रकाश में तारागण। मैं धन्य हूँ कि जिसने ऐसी चीज को समझा है। जिस तरह हिरन अपने नाफे की खुशबू में मस्त रहता है। उसी तरह मैं अपनी धान्यता में मग्न हूँ। आखिर मैंने संसार की मुश्किल घाटियों को तै कर ही लिया। इसके आगे तो अब कुछ है ही नहीं। मैं तो अब जीवनमुक्त हूँ, बन्धन का मेरे पास काम ही क्या? मेरा उस्ताद अब कोई नहीं बन सकता क्योंकि मैं सबका उस्ताद बन चुका हूँ। माना जो इशारा से इरादा यही कहेंगा कि जो तुमने समझा इसके आगे समझने वाली कोई बात नहीं।

माता—बहुत देर से चुप हो। आखिर क्या सोच रहे? जो जो अन्दर है उसे बाहर लाओ।

महात्मा—अच्छा तो मुझे कहना ही पड़ेगा और वह यह कि चालीस वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात् मैंने एक ऐसी बात सीखी है और वह सब और शुरू नहीं बल्कि दुःख को सुख बनाना है। जब जब दुःख मेरे सामने आता है मैं उसे सुख की शक्ल में बदल देता हूँ। मैं कांटे को फूल, अंधेरे को प्रकाश, [illegible] और दुःख को सुख की शक्ल में बदल देता हूँ। इसलिए संसार में दुःख मेरे लिए है ही नहीं। मैं हर तरह सुखी हूँ। जो अंधेरे में देख सकता है उसके लिए अंधेरा कहीं नहीं। जो दुःख को सुख बना सकता है उसके लिए दुःख कहीं नहीं।

मुझे विश्वास है कि संसार में एक ईश्वर है, सब कुछ उसकी मर्जी में हो रहा है। और जो दुःख मेरे ऊपर आता है मैं उसको प्रभु की तरफ से भेजा समझ कर उससे प्रेम करता हूँ। दुःख का भेजने वाला मेरी आत्मा की आत्मा, मेरे प्राणों का प्राण है। वही मुझ में अंश रूप होकर बैठा है और दुःख को मुझ पर भेज रहा है। इस संबंध में शत्रुता, गैरियत, द्वैत, जब्र कहाँ है हो नहीं। अपने ऊपर कोई आप जब्र नहीं करता। लेकिन कभी-कभी मनुष्य खुद कुनीन पीता नजर आता है। अपने हाथ का कांटा निकालने के लिए खुद सुई चुभोता नजर आता है। व्यायाम के समय कड़ी से कड़ी मुश्किलें अपने ऊपर डालता है। कभी अपना मवाद निकालने के फोड़े पर नश्तर चलवाता है। क्या इन तमाम हालतों को देख कर कोई यह कह सकता है कि अमुक मनुष्य अपने पर जब्र करता देखा गया, अपना शत्रु आप है। अपने हाथ से स्वयं सुई चुभो रहा था, नश्तर चल रहा था, कड़वी दवा पी रहा था। न समझने वाले तो चाहे कुछ भी कहें लेकिन समझने वाला यही कहता है कि वह अपने ऊपर दया कर रहा था, रहम कर रहा था, अपनी हालत को दुरुस्त बना रहा था। अगर बुखार के समय कड़वी दवा न मिले और कांटा निकालने को सुई न मिले और मवाद निकालने को नश्तर न लगे तो मनुष्य उस सुख से भी दुःखी होता है क्योंकि वह जानता है कि मेरा दुःख इन चीजों के मिलने से छूट जायगा और न मिलने से बढ़ेगा। उसे इस क़िस्म की चीजें ढूंढते देख कर नासमझ हंसते हैं कि यह कैसी खराब चीजों को ढूंढ रहा है और जब उन्हें उन चीजों की हिफ़ाजत करते देखते हैं तो और भी हैरान होते हैं कि यह कैसी चीजों को सम्हाल रहा है लेकिन मरीज उनको अपनी जान से ज्यादा अजीज समझता है सिर्फ इसलिए कि थोड़ा सा दुःख देनेवाली चीज के पर्दे में हमेशा का सुख मौजूद है। इसलिए वह ऐसी चीजें अपने तक पहुँचाता हुआ जालिम, जाबर और सख्त दिल नहीं

कहलाता बल्कि बुद्धिमान समझा जाता है। जो लोग बीमारी में दवाइयाँ इस्तेमाल करते नजर नहीं आते उनसे लोग कहते हैं कैसी भूल कर रहे हो! मर्ज बढ़ जायगा फिर क्या करोगे?

अगर हम उसके बनाए हुए हैं तो भी वह जो चीज हम तक भेजता है हमारी बेहतरी, तरक्की और आराम ही के लिए भेजता है। उसकी जाहिरी शक्ल चाहे किसी किस्म की हो। कुम्हार जिस चीज को बनाता है उसकी हिफाजत के सामान खुद ही भिजवाता है लेकिन घड़े की तामीर में कई हालतें इस प्रकार की आती हैं कि जिनको सख्त कहा जा सकता है। मट्टी का गूँदना, चाक पर चढ़ा कर घड़ा बनाना, आग में रख कर पकाना आदि सब बातें घड़े को आखिरी शक्ल देने के लिए हैं। जब भगवान को मनुष्य को बढ़ाना होता है, आध्यात्मिक उन्नति देनी होती है, संसार की अनित्यता को प्रगट करना होता है, दुनिया के दुःख रूप होने का ज्ञान देना होता है तो उस समय प्रभु को ऐसी चीजों का भी प्रयोग करना होता है कि जो जीव को कुछ समय तक रुचिकर नहीं होतीं। यह इस प्रकार की हालत होती है कि जब बच्चा तो दवा पीने से इनकार करता है और माँ गिरा कर उसे दवा पिलाती है। बच्चा उसे जब्र समझता है, माँ उसके बुखार को तोड़ना चाहती है। फिर यह दुःख मेरे लिए सुख रूप इसलिए है कि यह सुख का पता देता है। उस प्रभु की तरफ से जो कुछ भी आता है वह मनुष्य की बेहतरी के लिए होता है और उसे तरक्की देने के लिये।

एक लकड़ी बढ़ई के पास गई और जाकर कहने लगी 'तुम बेडौल चीजों को सुडौल कर देते हो और नाचीज चीजों को कीमती बना देते हो और रास्ते में पांव से ठुकराई जाने वाली लकड़ी को कुछ ऐसी शक्ल दे देते हो कि वह भावुक लोग उसे प्यार मन से मन्दिर की मूर्ति बना देते हैं, प्रणाम करते हैं, हार पहिनाते हैं, कपड़े आर गहने पहिनाते हैं और हर तरह की सुगन्धित चीजों से उसकी

आवभगत करते हैं। कल एक मेरी ही जैसी लकड़ी तुम्हारे पास आई थी और तुमने उसे ऐसा ही कर दिया था कि जैसा मैं कह रही हूँ। वह जब तुम्हारे पास पहुँची थी तो कुछ न थी और जब बन कर आई तो सब कुछ थी। उसे देख कर मेरे भी जी मे आई कि मैं तुम्हारे पास पहुँचूँ। इज्जत की जाऊँ कि जिस तरह वह की जा रही है। क्या आप मुझ पर दया करेंगे"?

बढ़ई ने कहा "क्या तुम इस इच्छा को लेकर आई हो कि तुम एक सुन्दर मूर्त्ति बनना चाहती हो"?

लकड़ी ने कहा "हाँ, यह मेरी सर्वोपरि इच्छा है, लेकिन मैं डरती हूँ मेरे पास देने को कुछ नहीं, न मालूम आपकी फीस क्या होगी"?

बढ़ई:—फीस?

लकड़ी:—जी, हाँ।

बढ़ई:—फीस तो इतनी ही काफी है कि तुम मेरे हाथों से बन सको और जब बाजार में जाओ और अच्छी कीमत पाओ, तो तुम्हारी तारीफ मे मेरी तारीफ होगी—यही मेरी फीस है। क्योंकि तुम्हें लाखों देख कर मेरे पास आवेंगी और मैं उन टेढ़ी लकड़ियों को खूबसूरत बना सकूँगा। और जब अच्छी अच्छी लकड़ियाँ बाजार में जा कर बिकेंगी, अच्छी कीमतें पावेंगी तो मैं खुश होऊँगा क्योंकि सौन्दर्य को बढ़ाना और भद्देपन को कम करना यह मेरा काम है और यह मेरी फीस इसलिये है कि मुझे अच्छी चीजें बना कर खुशी होती है। फिर इससे बढ़ कर और फीस क्या होगी?

लकड़ी:—(खुश होकर)—यह तो मुफ्त में ही काम बन गया। देना लेना कुछ न पड़ा और अच्छे के अच्छे भी बनने लगे।

लकड़ी:—तो फिर कृपा कीजिये। जल्दी कीजिये। मुझे अच्छा बनाइये।

बढ़ई:—(आइना दिखाता हुआ कहने लगा।)—तुम अपने आपको खुद नहीं देख सकती। इसलिये मैं तुम्हारे सामने शीशा रखता हूँ। इस दर्पण में अपना मुँह देखो और अपनी कीमत डालो कि क्या हो सकती है?

लकड़ी ने जब पूर्ण रूप से अपना आप देखा तो बहुत शर्मिन्दा हुई और कहने लगी। क्या मैं इतनी टेढ़ी बाँकी चीज हूँ? मेरी कीमत तो एक पैसा भी नहीं हो सकती। फिर बढ़ई कितना मेहरबान है कि बिना फीस लिये ही इतनी मेहनत उठाने को तैयार है।

लकड़ी लजाते हुए बढ़ई से कहने लगी, बढ़ई मैंने देख लिया जो कुछ कि मैं हूँ। मेरी कीमत एक पैसा भी नहीं, लेकिन तेरे पास आई हूं कि तू मुझको अनमाल बना दे।

जर्रा दीदम कि खुरशीद शुदो
शुद जर्फ़ जे सोहबते साहिब दिलाँ

(मैंने एक छोटे से परमाणु को देखा कि वह संसार का सूरज बन कर चमकने लगा लेकिन उस वक्त कि जब उसको ब्रह्म-ज्ञानियों, भगवत भक्तों और दिल के मालिक लोगों की संगति मिली।)

लकड़ी:—मैं हाजिर हूँ। मुझे बनाइये।

बढ़ई:—लेकिन मुझे बदनाम न करना।

लकड़ी:—(हैरान होकर)—बदनाम? और मैं करूँ? जिस पर आप इतनी मेहरबानी कर रहे हैं।

बढ़ई:—हाँ अक्सर जिन पर मेहरबानी का ख्याल करता हूँ वही मेरी बदनामी का कारण बनते हैं।

लकड़ी:—लेकिन वह कोई कमीने होंगे।

बढ़ई:—नहीं, तुम ही जैसे ।

लकड़ी:—यह क्यों ?

बढ़ई:—जब मैं उनकी अच्छी सूरत बनाने लगता हूँ तो वह घबड़ाने लगते हैं।

लकड़ी:—इसमें घबड़ाने की कौनसी बात है ?

बढ़ई :—घबड़ाने की बात तो कोई नहीं। लेकिन घबड़ा ही जावे हैं। जबकि मैं ....

लकड़ी :—आखिर क्या ? (चौकन्नी होकर) क्या कोई ख़ास बात है जो आप काट गये ?

बढ़ई:—नहीं, बात तो आम ही है, लेकिन कभी कभी ख़ास मालूम होने लगती है ।

लकड़ी:—आखिर रहस्य क्या है ? बताते क्यों नहीं ?

बढ़ई:—मुझे डर है कि......

लकड़ी:—आखिर आप किस तरह की बातें करने लग गये ? कुछ समझ में नहीं आता। आधी बात ही करके छोड़ देते हैं।

बढ़ई:—इसलिए कि तुम सुन कर शायद अच्छा बनना पसन्द न करो।

लकड़ी:—तो क्या ऐसा भी हो सकता है कि कोई अच्छा बनना ही न चाहे ?

बढ़ई—चाहते तो सब हैं लेकिन मंजिलें भी तो तै करनी पड़ती हैं।

लकड़ी:—तो क्या तुम मुझे कहीं और ले जाओगे ?

बढ़ई:—नहीं, ले जाना तो कहाँ है ? तुम्हारे सामने ही मंजिलें आने लगेंगी। आखिर तुम जानती हो मंज़िलें कड़ी भी होती हैं और आसान भी।

लकड़ी:—तो क्या हुआ ? मुझे डराइये नहीं। मैं हर बात के लिये तैयार हूँ।

बढ़ई :—बच्चों का नहीं खेल यह मैदाने मोहब्बत।
आये जो यहाँ सर से क़फ़न बाँध कर आये॥

लकड़ी :—लेकिन मैं तो हर तरह तैयार हूँ। मेरी क़ीमत ही क्या है ? जो मुझे मिटने का डर हो। बन गई तो लाखों की मिट गई तो कौड़ी की। मेरी हस्ती जो पहले ही न होने के बराबर है उसके दुबारा न रहने का डर ही क्या है ? शून्य को शून्य होने का संदेश डरा नहीं सकता। मौत को मौत नहीं आ सकती। मट्टी को और नीचे कोई नहीं गिरा सकता।

बढ़ई :—(मुस्करा कर) बड़ी बहादुर मालूम होती हो मुझे भी ऐसी ही लकड़ियाँ चाहिये कि जिन्हें मैं अच्छी तरह खूबसूरत बना सकूं और वे उफ़ तक नहीं करें।

अब तो हिम्मत कर रही हो। अगर रास्ता में डगमगाईं तो छूट न सकोगी। क्योंकि वही हालत मेरे लिये बदनामी की होती है कि जब बेडौल लकड़ी और अधिक बेडौल होकर मुझे अधबीच में छोड़ कर चली जाती है और देखने वाले कहते हैं कि यह किस कारीगर की बनाई हुई है। उनको देख कर बाकी लकड़ियाँ भी नहीं आतीं और मेरा काम रुक जाता है। अगर तुम भी उनमें से एक हो तो तुम्हारा अभी चले जाना बेहतर है। वर्ना आखिरी तक······ न छूट सकोगी।

लकड़ी :—आप मुझे नाहक़ डरा रहे हैं। मैं हर तरह तैयार हूँ और रास्ते की हर मुश्किल को आसान बना लूंगी क्योंकि मुझे अच्छा बनना है।

बढ़ई :—मैं भी अच्छा बनाने में कभी कोई कसर बाकी नहीं रखता।

लकड़ी :—तो फिर जल्दी कीजिये। वक्त जा रहा है।

बढ़ई :—तो फिर मै तैयार हूँ। लीजिये, काम शुरू करता हूँ। अन्दर जाता है और अपने साथ तेशा, कुल्हाड़ी, आरा, और रंदा वग़ैरह लेकर बाहर आता है।

लकड़ी :—क्या यह सब चीज़ें मेरी हिफ़ाजत के लिये लाये हैं?

बढ़ई :—हाँ, इन्हीं से तो तुम अच्छी बन सकोगी? तुम्हारी कीमत ऊँची करने वाली सब यही चीज़ें हैं।

लकड़ी :—(कुछ न समझ सकती हुई कहने लगी) जल्दी कीजिये। मुझे भी उस बहन के पास पहुँचना है कि जिसे तुमने अभी अच्छी बना कर भेजा है।

बढ़ई तेशा मारता है, कुल्हाड़ी चलाता है, आरे से काटता है, और अपना काम निहायत तेज़ी से शुरू कर देता है। किसी तरफ़ कुछ छीलता है, किसी को काटता है, कहीं रगड़ता है और किसी हिस्से को ख़राद पर चढ़ाता है।

लकड़ी :—(चिल्ला कर) हाय! यह क्या कर रहे हो? तुमने मेरे टुकड़े टुकड़े कर दिये, मुझे छील डाला, यह मेरी अच्छी शक्ल बना रहे हो या मेरी शक्ल को ही मिटा रहे हो? क्या इस तरह काट कर मुझे चूल्हे में जलाना है? छोड़ो, छोड़ो, मैं अच्छी नहीं बनूंगी। इससे तो मैं पहले ही अच्छी थी। न कोई चोट थी, न कुल्हाड़ी का वार, न तेशे की रगड़, न ख़राद की गर्ज। क़ीमत चाहे कुछ भी न थी लेकिन आराम तो था। तुमने तो मुझे हर तरह

बर्बाद कर दिया, कहीं का भी न रखा। छोड़ो, मैं अच्छा नहीं बनाना चाहती। मुझसे यह सहा नहीं जाता।

लेकिन बावजूद इस गिड़गिड़ाहट के भी बढ़ई एक न सुन रहा था और अपना काम तेशों, आरों से लिये ही जा रहा था। जब यह ज्यादा चिल्लाई तो बढ़ई ने जरा सा हाथ रोक कर कहा—आखिर वही बात सामने आई जिसे मैंने पहिले कहा था। तुम ख़ुद आयीं, मैंने बुलाया नहीं, और जब आयीं तो मैंने रास्ते की मंजिलों से, वाक़िफ़ कर दिया। तुम न मानीं और मैंने काम शुरू कर दिया। अब तुम घबड़ा रही हो। अब मैं नहीं छोड़ सकता। मुझे बदनाम नहीं होना है जो तुम्हें ऐसी हालत में छोड़ दूं।

लकड़ी:—तो कृपा करके जरा रियायत से काम लीजिये।

बढ़ई:—मैं तुम पर कोई ऐसा वार नहीं करता कि जिसे तुम बरदाश्त न कर सको। मेरे तमाम वार तुम्हारी बरदाश्त की हद के अन्दर हैं, तुम्हारा चीखना ही तुम्हारी बरदाश्तों का सबूत है। अगर बरदाश्त से अधिक वार करता तो तुम और तुम्हारा चीखना न मालूम किधर गायब हो जाते। तुम टुकड़े टुकड़े होकर उड़ जातीं।

लकड़ी:—तो क्या इसी का नाम रियायत है?

बढ़ई:—मैं मजबूर हूं। अगर इससे कोई और आसान तरीक़ा होता तो मैं इस्तेमाल करता। अर्थात् तुम सोची रहतीं और मैं तुम्हें बना डालता। लेकिन उस हालत में न तो तुम मुझको समझ सकतीं, न ही अपनी उन्नति के रहस्य को ही। यह समय तो व्यतीत हो जायेगा लेकिन इसका नतीजा नहीं बीतेगा। जरा हौंसले से काम लो। मैं तुम्हारी ही बेहतरी के लिये सब कुछ कर रहा हूं।

۸۱۱۵

लकड़ी :—भूल कर मैं किस के पास आ गई। मेरी वहन का बनाने वाला तो कोई दूसरा होगा और उसने बड़े आराम से उसको बनाया होगा। लेकिन करूं क्या? न तो सह ही सकती हूँ और न ही यह छोड़ता है।

इतने में बढ़ई फिर तेशा चलाता है और मुख्तलिफ (कई प्रकार के) औज़ारों से काम लेता है। लेकिन बढ़ई यह कहता नज़र आता है मुबारक हो! तुम्हारी आँख बन गई, अब कान बन गये, लीजिये, नाक भी तैयार है, खूब! चेहरा भी तैयार हो गया।

लकड़ी :—(घबड़ा कर गुस्से होकर) खाक तैयार हो गया। मुझे तो कुछ नज़र नहीं आता, केवल अपने छिलके ही उड़ते नज़र आते हैं। तुमने ज़ुल्म का तरीका बहला कर सीखा है, लेकिन प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या जरूरत है? मैं अपने चिथड़े उड़ते देख रही हूँ। तू कह रहा है कि आँख बन गई, नाक बन गई····· बढ़ई लकड़ी की बातों से नाखुश न होता हुआ अपना काम करता ही जा रहा है। कभी लकड़ी को दिलासा देता है और और कभी तेशा चलाता है।

लकड़ी :—अब तो मियाँ तेरे बस में पड़ी चाहे कोड़ें दिला दे, जी खोल कर सख्तियाँ कर ले।

जिस ठाकर सों नाहीं चारा।
ताको कीजे सद् नमस्कार॥

लेकिन थोड़ी देर के बाद बढ़ई अपने औज़ारों को उठा कर एक तरफ़ रख देता है। लकड़ी भागना चाहती है।

बढ़ई :—(पकड़ कर) कहाँ जाती हो?

लकड़ी :—जहन्नुम में। थोड़ी सी जान बाकी बची है, इससे चन्द दिन गुज़ारा कर लूं।

बढ़ई :—इतना क्यों घबड़ा गई ? जब कि मैं तुम्हारे साथ हूँ।

लकड़ी :—लेकिन मुझे तो तुम्हारी शक्ल से ही डर आ रहा है। और तुम्हारे इन शस्त्रों से कि जिनके बेरहमाना वार मुझ पर हुये।

बढ़ई :—(मुस्करा कर) क्या तुम समझ सकती हो कि मैंने दुबारा तेज़ करने के लिये इनको अलहदा रक्खा है और यह फिर तुम पर चलाये जायेंगे ?

लकड़ी :—खुदा खैर करे। (और घबरा जाती है)

बढ़ई :—नहीं, नहीं, डरो नहीं, तुम्हारी सब कड़ी मंजिलें खत्म हो चुकीं। मैंने तुम्हें वह सब कुछ बना दिया है कि जो कुछ मुझे बनाना था।

लकड़ी :—(कुछ मानती हुई और कुछ न मानती हुई सन्देह सागर डूबी हुई है) तुम्हें न मालूम क्या नज़र आ रही हूँ और तुमने मुझे क्या बनाया है ? लेकिन मेरी हालत तो नागुफ्ताबेह है जिसका जिकर न करना ही अच्छा है। मैं शीशा देखने की भी हिम्मत नहीं कर सकती। क्योंकि मुझे उसमें नज़र ही क्या आयेगा, जब कि तुमने मुझे छील-छोल कर तकरीबन खत्म ही कर दिया है।

बढ़ई :—लेकिन बातें तो ऐसे कर रही हो जैसे कोई हस्ती का पहाड़ बोलता है। न होने में तो फ़रियाद का क्या काम ? आखिर मुझे आइना दिखाना ही पड़ा जिससे कि तुम्हारा तुम्हारा संशय दूर हो और तुम मेरी मेहनतों को बेहतर-बानी समझ सको।

तुझे शिकवा वो रूठा है उसे दावा मोहब्बत का
यह है जब मेहरबाँ पहले तो फिर वह मेहरबाँ क्यों हो ?

वफा मे हो वफा जिसके जफा में भी वफा पिन्हा
निगाहों मे तेरी गाफिल वह फिर न मेहरबाँ क्यों हो ?

बढ़ई :—लकड़ी ! सोचा कि मैंने तुम्हारी तमाम बातें सहन करके भी तुम्हारी यह शक्ल बनाई और मेरा यही मतलब था कि तुम अच्छी बन सको । अब तुम अच्छी बन गई हो। मेरा तमाम काम पूरा हो चुका।

लकड़ी :—मैं तो ऐसी अच्छी बनी कि न घर की रही न घाट की। बढ़ई बात काटता हुआ एक तरफ चला जाता है।

लकड़ी :—(सहम कर) मेरी सख्त कलामियों पर नाराज हो गये ? मेरी तबाही के नये शस्त्र लेने गये ? ओह ईश्वर ! मैं न पैदा होती तो अच्छा था।

बढ़ई वापस आ रहा है। उसके हाथ मे कोई चारकोना चीज उठाई हुई है।

लकड़ी :—यह तो कोई शस्त्र नजर नहीं आता। कोई औज़ार भी नहीं है। न मालूम यह कैसा पिंजरा मुझे कैद करने के लिये ला रहा है ? (लकड़ी घबराई हुई गाती है।)

इश्क मे तेरे कोहे ग़म सिर पर लिया जो हो सो हो।
ऐशो निशाते जिन्दगी तर्क किया जो हो सो हो॥
हिज्र की सब मुसीबतें कीं अर्ज उनके रूबरू।
नाजो अदा से मुस्करा कहने लगे जो हो सो हो॥

बढ़ई ने आते ही चौखटे का मुँह लकड़ी की तरफ फेरा। बस फिर क्या था ? एक हैरानी, एक आश्चर्य। और कुछ देर तक देख कर भी विश्वास न आया। कभी उसे जागृत समझता और कभी स्वप्न और कभी तिलस्माती खेल।

यह चौखटा चौखटा न था बल्कि आईना. (दर्पण) कि जिसको बढ़ई लकड़ी को उसका मुँह दिखाने के लिये लाया था।

लकड़ी ने इसे पिंजरा ख़्याल किया था, दरअसल यह इसमें क़ैद हो गई, यह अक्स बन कर उसमें उतर गई। लेकिन इसने यही समझा कि इसमें नज़र आने वाली चीज़ किसी होशियार मुसव्वर की बनाई हुई तस्वीर है कि जो इस आइने पर खींची गई है। किसी मन्दिर में जाकर रखी जायेगी। इसको अपनी बदनसीबी पर पर अफ़सोस आया और उस शक्ल को देख कर और भी घबरा गई और कहने लगी—काश! कभी मैं भी ऐसा बन सकती।

बढ़ई :—देखा कैसी सुन्दर है?

लकड़ी :—और तुमने यह भी देखा कि मैं कैसी बदसूरत हूँ?

बढ़ई :—बदसूरत और तुम? मुझे बदनाम कर रही हो?

लकड़ी :—बदनामी तो मेरी शक्ल ही कह रही है मुझे क्या करना है?

बढ़ई :—(चौकन्ना हो कर मन ही मन में) आख़िर मामला क्या है कि शीशे में इतनी ख़ूबसूरत शक्ल देख कर भी इसको अपनी बदसूरती का ख़्याल नहीं जाता?

"यकीन करो। तुमसे ज़्यादा ख़ूबसूरत मैंने और नहीं बनाई"।

लकड़ी :—लेकिन मेरी शक्ल तो सब को ख़ूबसूरत बना रही है और वह इसलिये कि सबसे बदसूरत मैं ही हूँ। जो भी कोई मेरे सामने आता है मेरी निस्बत से ख़ूबसूरत बन जाता है। जिसे ख़ूबसूरत बनना हो वह मेरे पास आ जाय। मुझे देख कर सबको अपनी शक्ल अच्छी लग रही है।

हमारी पस्ती से होती है इमरत जहां की।
नज़ामे दहर में हम कुछ तो काम करते हैं॥

बढ़ई हक्का बक्का हो गया कि आख़िर माजरा क्या है ? इसको अपनी शक्ल पर यह बदगुमानी कैसी ? यह अपनी शकल को शीशे में देखती हुई भी उसे पसन्द क्यों नहीं करती ?

बढ़ई :—वह देखो आइने में क्या है ?

लकड़ी :—उसी को देख कर तो मैं रो रही हूँ। न जाने किस मेहरबान ने उसको बनाया है। ऐसी शक्ल तो हज़ार आफतें सह कर भी मुझे बनवाना मंजूर थी। काश ! तुम भी इस क़िस्म के मेहरबान बढ़ई होते कि मुझे भी ऐसा ही बना सकते।

बढ़ई :—(मुस्करा कर) तो क्या मैंने तुम्हें नहीं बनाया ?

लकड़ी :—(चौंक कर) जी हाँ बनाया होगा !

बढ़ई :—इस आइने में फिर देखो।

लकड़ी :—क्या ख़ाक देखूँ जब कि वहाँ पहले ही किसी का चित्र बना हुआ है।

बढ़ई भेद को समझ कर कि लकड़ी अपने ही प्रतिबिम्ब को किसी और का चित्र देख रही है और सच भी तो है इसे कैसे यक़ीन आ सकता है कि यह इसी की शक्ल है जब कि इसने अपनी पहिली शक्ल देखी हुई है। और तिस पर मेरी मारधाड़ ने इसके दिल में और भी कुरूप होने का ख्याल पैदा कर दिया है। वाह ! वाह !! वह इस क़दर हसीं है कि उसको ख़बर नहीं है। अब सिर्फ "तत्त्वमसि" कहने की देर है कि यह तू ही है और फिर इसके मुंह से "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् वही मैं हूं की आवाज हम सुन सकेंगे।

बढ़ई :—तो सुनो ! इसमें किसी और का चित्र नहीं ! यह तुम्हारे ही चेहरे का प्रतिबिम्ब है।

लकड़ी :—(ज़रा भी विश्वास न करती हुई) क्यों फ़ुठला रहे हो ?

बढ़ई जा कर दूसरा आइना ले आता है और दूर से दिखा कर पूछता है 'इसमें तो किसी और की शक्ल नहीं ?"

लकड़ी :—(झुँफलाई हुई) नहीं।

बढ़ई :—(आइने को उसके नज़दीक करके) अब देखो कौन नज़र आ रहा है ?

लकड़ी :—यह उस पहिले चित्र का प्रतिबिम्ब है।

बढ़ई :—लेकिन वह तो औंधा पड़ा है। वह इसमें प्रतिबिम्बित कैसे हो सकता है ?

लकड़ी :—तो इसमें फिर है कौन ?

बढ़ई :—(मुस्करा कर) सिर्फ़ तुम और कौन ?

लकड़ी—(खुश हो कर) हैं ! मैं और मैं ? क्या मेरी यह शक्ल बन सकती है ? क्या मैं इतनी सुन्दर हो सकती हूँ ? ओह ! मेरे भाग्य ! मैं धन्य हो गई। ए मेहरबान बढ़ई ! मुझे क्षमा करना। मैंने तुम्हें क्या क्या न कहा और तुमने क्या क्या न सहा ! उफ़ ! मेरी पहिली मूर्खता मेरा पागलपन कि अपने ऊपर दया करने वाले को मैं क्या क्या कहती रही और वह क्या क्या सुनता रहा ? मुझे माफ़ी माँगनी चाहिये वर्ना यह पाप मुझसे कैसे उतरेगा ? यह तो गंगा-स्नान पर भी दूर न होगा ? किसी मंदिर में रख कर पूजी ज़रूर जाऊँगी मगर यह पाप मुझको सदा जलाता रहेगा। अफ़सोस ! लकड़ी का काम जलना ही है। पहिली हालत में होती तो चूल्हे में जलाई जाती। अब इस हालत में हूँ, अपने दोष को

समझ कर जल रहा हूँ। फिर बढ़ई की तरफ खामोश हो कर तकने लगी।

बढ़ई :—यह देख कर कि इसे अपने सुन्दर स्वरूप का पता चल गया है कुछ अजब अन्दाज़ मे कहने लगा—लकड़ो! मुझे माफ करना! मैंने तुझ पर बहुत सख़्तियाँ कीं। तुझे छीला, काटा, पीटा, रोंदा इत्यादि इत्यादि और मेरे औज़ारों को भी माफ़ करना कि उनकी वजह से तुम पर यह ज़्यादतियां हुईं और तिस पर बेरहमी यह कि तुमने भागना चाहा और मैंने भागने न दिया। पता नहीं कि मैं माफ़ हो सकूंगा या नहीं।

लकड़ी :—ऊफ! भगवन यह क्या कह रहे हो? तुम मेरी क़िस्मत बनाने वाले हो। तुम मेरे भगवान हो! मैं पैसे मे कम क़ीमत वाली होकर तुम्हारे पास आई थी और आज तुमने मुझे सुन्दरता की देवी बना दिया। मेरे अन्दर वह देवी भाव भर दिये हैं कि देखने वाला मुझे देवी समझ कर बेअख़्तियार झुक जाता है। मैं तुम्हें कहां तक धन्यवाद दूं! यह तुम्हारे शस्त्र (औज़ार) मुझे इस जीवन तक लाने का कारण बने। मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि कभी इतनी सुन्दर बन सकूंगी। यह तुम्हारी दया नहीं तो क्या है कि मेरी तमाम बातों को क्षमा करते हुए मुझे अच्छा बनाते ही गये और आज मुझे यह रुतबा अता कर ही दिया। आप मुझे माफी मांग कर न मालूम कहाँ फेंकना चाहते हैं लेकिन मैं जानती हूँ कि तुम मुझे फेंकोगे नहीं क्योंकि मैं तुम्हारी ही बनाई चीज़ हूं। मुझे माफ कीजिये वर्ना मैं जल कर भस्म हो जाऊंगी।

दयालु बढ़ई :—अच्छा तो सुनो ! तुम्हारा कोई क़सूर नहीं। तुमने जिन हालतों में अविश्वास किया वह तुम्हारे लिये उस वक्त किसी हद तक मुनासिब ही था। लेकिन मुझे पता था कि मैं तुम्हारी बेहतरी में हूँ। इस लिये मैं तुम्हारी सब बातें सुनता रहा और तुम पर नाराज़ न हुआ। अब तुम शोक मत करो। जो हुआ सो गुज़र गया। तुम्हारा स्वभाव शिकायत करना है और मेरा स्वभाव माफ़ करना। अब कोई कसर बाकी रह गई हो तो बताओ ?

लकड़ी :—वह एक ही बात है कि मेरे ऊपर फिर आरे चलाये जांय और तेशों से काम लिया जाय।

बढ़ई :—(चौंक कर) :— वह किस लिये ?

लकड़ी :—सिर्फ यह देखने के लिये कि अब मैं उसमें ख़ुश रह सकती हूँ या नहीं। तेरी मार से प्यार कर सकती हूँ या नहीं। तेरे औज़ारों को चूम सकती हूँ या नहीं।

बढ़ई :—लेकिन अब उनकी ज़रूरत नहीं। अब तुम्हारे लिये उनमें ख़ुश रहना एक मामूली बात होगी क्योंकि तुम आज़माइश (परीक्षा) के बाद दुबारा उसी इम्तिहान में बैठ रही हो जो तुम्हारे लिए मामूली और स्वाभाविक है। अब तो तुम्हारे ऊपर किसी शस्त्र का वार या किसी औज़ार का चलाना उतना ही नुक्सानदेह होगा कि जितना पहिले मुफीद था। क्योंकि अब तू मुकम्मिल हो चुकी अब शस्त्र लगाने से सिवाय बिगड़ने के कोई नतीजा न होगा। किनारे पर पहुँच कर किश्ती बेकार हो जाती है, मंजिल पर पहुँच कर दुःख और सुख में

कोई वास्ता नहीं रहता और न ही उन मंजिलों से कि जिनमें से गुजर कर आया है।

लकड़ी आइने में दुबारा झाँकती है और कुछ इतना मगरूर हो जाती है कि मानों उससा दूसरा है ही नहीं। बढ़ई से कहती है:— देखो! मैं कितनी खूबसूरत हूँ!

बढ़ई को ख्याल आता है कि यह अपनी पहिली हालत को भूल गई है और इससे कहने लगता है कि अच्छा तुम यहाँ किस तारीख को आईं? लकड़ी को ऐसा सुनते ही अपनी पहिली अवस्था का ध्यान आ जाता है और वह इससे कहने लगती है कि दरअसल बेडौल होना और एक पैसे का भी न होना यह मेरी कीमत है कि जब मैं आई थी और अब जो कुछ मुझमें है यह तेरी मेहरबानी है और कुछ नहीं। लेकिन अब तो मैं बाकी लकड़ियों का, जो कि ऐसा बनना चाहती हैं या जिन्हे ऐसा बनना है, यही शिक्षा दूंगी कि वह बढ़ई की मार को प्यार करना सीखें। उसके डरावने शस्त्रों में प्रेम और तरक्की की लहरों को देखें, उस पर अन्धविश्वास करें और जो वक्त सख्ती का हो उस दुःख को इसी ख्याल से सुख बनायें कि यह तमाम हालतें मुझे पूर्णता (Perfection) की ओर ले जा रही हैं। और इनकी तह में सिवाय प्यार के और कुछ नहीं। तरक्की का एक-मात्र यही राज है। इस भाव से दुःख सुख में बदल जायगा और हर लकड़ी सुन्दर बनने तक रास्ते की मञ्जिलों को बड़ी आसानी से काट सकेगी—नहीं, बल्कि, इस किस्म की हालतें आने लगेंगी तो और खुशी होगी कि अब तरक्की का समय सामने है। कांटों के उगने में फूल के आने का पैगाम मिलेगा। बादल की कड़क खुश्क खेतों के लिये पानी के छींटे लाएगी। दीपक की बत्ती को काटना उसके प्रकाश को और ऊँचा करेगा, सोने का आग में गलना उसे और साफ कर देगा।

मेरे श्री गुरुदेव श्री बाबाजी भगवान अक्सर यह शेर फरमाया करते थे।

गर फलक कारे तुरा बरहम जनद अज जा मरौ।
जामा रा ख्यात साजद् कता बहरे दोख्तन॥

(अर्थ—अगर जमाने की गर्दिश तेरे काम को बिगाड़ दे, उलट पुलट कर दे, तू घबरा नहीं क्योंकि दर्जी का कोई कपड़ा सीना होता है तो पहले उसे काट डालता है यानी उसके काटने का मतलब कपड़े को खराब करना नहीं बल्कि सीकर आपको सूट पहिनाना है।)

तीसरे महात्मा ने कहा—इसलिये जो भी दुःख हम पर आता है वह बतौर दवाई के होता है या हमारी तरक्की के लिये होता है। इसलिये मैं उस दुःख को सुख समझने लगता हूँ। जिस दुःख से अनन्त सुख की इच्छा पैदा हो, जो सुख संसार की अनित्यता को प्रकट करे, जिस दुःख से भगवान की याद आये, जो दुःख भगवान के नजदीक करे, जो दुःख दुनिया से मन न लगने दे, जो दुःख अवगुणों को प्रकट करे, जो दुःख मोक्ष की फिक्र कराये, महात्माओं की संगति कराये, असत्य का त्याग कराये, गरूर को कम करे, क्रोध को कुचल डाले, जिस दुःख से वैराग्य पैदा हो, जिस दुःख से ज्ञान हासिल करने की इच्छा पैदा हो, यहाँ तक कि जो दुःख भगवान का दिया हुआ हो और भगवान के नजदीक कराने वाला हो वह दुःख दुःख कैसे हुआ ? वह तो मेरे हृदय में सुख से भी बड़ा सुख है। अगर मैं प्रभु के सुख से प्रेम कर सकता हूँ तो उसके दुःख से घृणा कैसे करूँ ? किसी के चरण छूने से उनको ज्यादा खुशी होती है बजाय इसके कि उसका सर छुआ जाय। भगवान के सुख का प्रेम करना कौन सी बहादुरी है। जब उसके दुःख से प्रेम किया जाता है तो वह और भी खुश होता है।

मेरे श्री गुरुदेव एक दिन फरमाने लगे कि आप लोगों को पता है मेरे प्यारे कौन से हैं ? तो खुद ही फरमाने लगे—दुःख, नरलोक,

बेइज़्ज़ती, बदनामी, नादारी, मुफ़लिसी, बेसरोसामानी। सुना बेटा! यह हैं मेरे माशूक़, मेरे प्यारे।

किसी ने कहा "हुज़ूर"! प्यारे तो जरूर हैं लेकिन शक्ल बड़ी भयंकर है। फ़रमाने लगे—"जब मैं उनसे प्यार करता हूँ तो शक्ल भयंकर कैसे रही और फिर मेरे माशूक ऐसे हैं कि रक़ीब कोई नहीं। आख़िर शिवजी के गले के हार तो सांप इत्यादि ही हो सकते हैं। इसलिए मैं निष्कन्टक राज्य कर रहा हूँ। मेरी सल्तनत पर हमला करने वाला कोई नहीं क्योंकि जिन चीज़ों को मैं प्यार करता हूँ दूसरा उनसे प्यार नहीं कर सकता। इसलिए मुझे अपने धन के जाने की फ़िक्र नहीं"।

एक भक्त ने कहा, "प्रभो"! यद्यपि मेरे पास वह नेत्र नहीं कि जिनसे मैं तेरे दर्शन कर सकूँ लेकिन मैं निराश नहीं चूँकि मेरी तमाम आयु तेरे ही ध्यान में गुज़री है। मैं तुझसे स्वर्ग किस मुँह से माँगू जब कि मैंने कोई अच्छा कर्म ही नहीं किया और अगर तू बग़ैर इनके मुझे स्वर्ग दे देगा तो तुझसे न्याय के चाहने वाले लड़ने लगेंगे और कहेंगे कि अगर इसे बग़ैर अच्छे कर्म किए ही स्वर्ग मिल सकता था तो हमने स्वर्ग प्राप्ति के लिए इतनी कठिनाइयाँ क्यों सहन कीं। इसलिये हे! प्रभो! मैं आपको अन्यायकारी नहीं कहलाना चाहता। हालांकि यह भी तेरा एक न्याय ही है कि तू आजिज़ों पर दया कर, अब मैं तुझसे अपने कर्म का फल माँगता हूँ और वह है नर्क—तू उसमें मुझे डाल दे। और अगर तूने मुझे न डाला तो भी शायद तुझे कोई अन्यायकारी कह दे। जिस चीज़ को मैं चाहता हूँ उसके मिलने से मुझे जरूर ख़ुशी होगी। इसलिये मेरी ख़ुशी को न छीन। लेकिन कोई यह न कह दे कि दुःख को क्यों माँग रहा है। मनुष्य हमेशा अपने स्वार्थ को देखता है। इसमें भी मेरा स्वार्थ है।

"आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"।

सब चीजें अपनी आत्मा ही के लिये प्यारी लगती हैं। नर्क के दुःख को भी मैं अपने आराम के लिये ही माँग रहा हूँ क्योंकि मेरे ख्याल में नर्क तुझको भूल जाना है और तेरी याद स्वर्ग से भी बढ़ कर है। दूसरे शब्दों में, मैं तुझसे नर्क और नर्क का दुःख नहीं माँग रहा बल्कि उसमें रह कर तेरी याद को माँग रहा हूँ। अब जब मैं नर्क में होऊँगा और वहाँ भी आग मुझे जलाएगी तो मुझे बेअख्तियार तेरी याद आयेगी जो याद कि नर्क के दुःख को कम करने के लिये काफ़ी से ज़्यादा होगी। अब नर्क की आग को आग कहूँ या तेरी याद। जब वह तेरी याद है तो वह आग नहीं। जब वह आग नहीं तो दुःख नहीं। जब दुःख नहीं तो सुख है। मैं उस आग में पड़ा तेरी राह देखा करूँगा। स्वर्ग वाले तो शायद तुझे कभी छोड़ कर स्वर्ग के सुखों को भी देखने लगें लेकिन उस आग में पड़े हुए मेरा सुख केवल तू और तेरी याद होगी एक तो तेरी याद दुःख को कम करेगी दूसरे तेरे नर्क का दुःख मेरे मन में प्रेम की लहर पैदा करेगा—मैं उसे तेरा दुःख समझ कर प्रेम करूँगा और यह प्रेम भी उस दुःख को कम करेगा। जब स्वर्ग तेरा है तो नर्क भी तेरा है। अगर तू अपने स्वर्ग को देखता है तो कभी अपना नर्क भी देखने आयेगा। क्योंकि एक ही मालिक के पैसों से ड्राइंग रूम, रसोईघर और सर्वेन्ट्स क्वार्टर इत्यादि बना करते हैं। जो अपने ड्राइंग रूम की फ़िक्र करता है वह अपने बाथ रूम और किचिन वगैरह की भी देखभाल करता है। इधर मैं तेरे इन्तज़ार में बैठा सरापा चश्म बन जाऊँगा और उधर तू कभी शाहे हुस्न (खूबसूरती का बादशाह) टहलता हुआ अपने नर्क की तरफ़ आएगा और दरवाज़ा खटखटा कर पूछेगा कि अन्दर कौन है? तो वहाँ केवल एक मैं ही होऊँगा, मैं दरवाज़ा खोलूँगा और तू मेरा

हाल पूछने वाला होगा और मैं बताने वाला। तू पूछेगा कि तेरा क्या हाल है? और मैं मुहीउद्दीन उस आवाज़ को सुन कर कुछ इस तरह मस्त हो जाऊँगा कि जवाब का देने के बजाय नाचने लगूंगा। और उस वक्त तक नाचता चला जाऊँगा कि जब तक मैं नाच सकूंगा। अब भला कौन कह सकता है कि वह नर्क है कि जहाँ तू खुद खड़ा अपने प्यारे का हाल पूछ सकता है? और फिर तेरा इतना पूछने पर 'कि तेरा क्या हाल है?' मेरा हाल बुरा कैसे रह सकता है। इस तरह मैं तेरे दुःख को सुख बनाऊँगा और तेरे नर्क को स्वर्ग।

मुझे इस दर्द में लज्जत है यह जोशे जनूं अच्छा।
मेरे जख्मी जिगर के हर घड़ी टांके उधेड़े जा॥
कहूँ क्या रंग उस गुल का अहाहाहा अहाहाहा।
हुआ रंगी चमन सारा अहाहाहा अहाहाहा॥
नमक छिड़के है वह किस किस मजे से दिल के जख्मों पर।
मजे लेता हूँ मैं क्या-क्या अहाहाहा अहाहाहा॥
मन लज्जते दर्दे तो बदर्मा न फरोशम।
कुफ्रे सरे जुल्फे तो बईमां न फरोशम॥

अर्थात् :—तेरे दर्द को मैं दवाई से नहीं बेचता और तेरे कुफ्र को ईमान से) इसलिये माताजी! जब से मैंने दुःख को इस नजर से देखना शुरू किया है मेरा दुःख ही कट गया है। जब दुःख सामने आता है मैं उसको सुख की शक्ल में बदल डालता हूँ और जब इस शेर को याद करता हूँ तो दुःख को सुख करते कोई देर नहीं लगती।

न हुर्दी साज तुरा नेस्त कार
दम दरकश कि हरांचे साक़िये मा रेख्त ऐन इल्ताफ़स्त

अर्थात् :—यह खानिस है, यह तलछट है इससे क्या मतलब ? जो कुछ उसके हाथ से मिल रहा है वह ऐन उसकी दया ही है।

अगर कोई बादशाह किसी को अपने हाथ से मारे तो दूसरों के प्यार से वह मार कहीं अच्छी होगी क्योंकि वह मार कर अपना बना रहा है। जब उस (प्रभू) की भेजी हुई चीज के साथ उसका हाथ नजर आता है तो फिर चीज से सम्बन्ध उस चीज के लिये नहीं रहता बल्कि उस हाथ की वजह से कि जिस हाथ से वह सामने आता है। मन्दिर का थोड़ा सा प्रसाद भी बाजार की भरी मिठाइयों से कहीं अच्छा लगता है। मजनू को लैला की हर बात प्यारी लगती थी।

एक मां का एकलौता बच्चा घुटनों के बल चल रहा था। मां किसी तरफ देख रही थी तो बच्चे ने पीछे से आकर उसके बालों को जोर से खींचा। मां चिल्ला उठी, "हैं ; कौन ?" लेकिन जब मुड़ कर झांका तो उसी का नन्हा प्यारा बच्चा था। तो बस फिर क्या था। बालों को खींचने के दुःख को अपने नन्हे बच्चे के हाथों को देख कर इतनी प्रसन्न हुई कि बच्चे के हाथ चूम लिये और कहा कि यह दुःख मुझे इसलिये प्रिय है कि मेरे प्यारे बच्चे के हाथों से आ रहा है।

श्री राधेजी ने भगवान् कृष्ण के नाखून के कटन को इसलिए प्यार किया कि वह भगवान के हाथों का दिया हुआ था। एक तो वह इसलिए खूबसूरत था कि भगवान के हाथों से मिला था और दूसरे इसलिये कि भगवान की याद दिलाता था।

एक मां का बच्चा डरा करता था और सीढ़ियों में जाकर वह मां को आवाज दिया करता था "मां ! मुझे आकर ले जा। इस अंधेरे में कोई डरावनी चीज रहती है।" मां बच्चे का डर दूर करने के लिये एक दिन स्वयं डरावना चेहरा लगा कर उन्हीं सीढ़ियों के पास खड़ी रही। जब बच्चे ने जाकर मां को आवाज दी तो मां डरावना चेहरा लेकर सामने आ खड़ी हुई। बच्चे ने मां के हाथ पहिचान लिये

और कहने लगा कि डराती क्यों हो ? मै भूल नहीं सकता। तुम तो मां हो मां। इतना सुनते ही मां ने भयंकर चेहरा उतार दिया और बच्चे को गले लगा लिया। आइंदा के लिये बच्चे का डर दूर हो गया कि यहाँ कोई डरावनी चीज नहीं थी। वह तो सिर्फ मेरी ही मां डरावना चेहरा लगाये खड़ी थी।

इसी तरह जब दुःख के पर्दे में भगवान या उनकी इच्छा नजर आयी तो दुःख-दुःख न रहा बल्कि सुख बन गया।

महात्मा सरमद जी का गला काटने जब जल्लाद आया तो उसकी तलवार और उसकी शक्ल को देख कर कहने लगे—

बिया बिया फिदाये तो शुवम बिया बिया।
बहर सूरते कि तू मे आई मन तुरा खूब मी शनासम॥

(आ! आ! मैं तुझ पर क़ुर्बान जाऊं। आ! आ! क्योंकि तू जिस भी लिबास में आता है मैं तुझे ख़ूब पहिचानता हूँ।)

इनके लिये तलवार और जल्लाद, तलवार और जल्लाद न थे बल्कि या तो भगवान ख़ुद आप थे या उनकी इच्छा इस शक्ल में मूर्तिमान होकर सामने खड़ी थी। जब उनका सर काट दिया गया तो कहने लगे आज उस प्यारे ने मेरे सर को तन से जुदा कर दिया कि जो उम्र भर मेरा मित्र रहा, झगड़ा खत्म हुआ। वर्ना सर का बोझ जिस्म पर एक बड़ा बोझ था।

जिनको प्रभू के ग़म, प्रभू के दुःख (जो कि प्रभू की याद का कारण बनता है) से प्रेम हो जाता है वह तो उसके दुःख को इस तरह माँगने लगते हैं कि जैसे प्यासा पानी को।

भगवान् ने एक भक्त से पूछा—"आख़िर तुम क्या चाहते हो ?" तो उन्होंने कहा—"प्रभो! दुःख और अनन्त दुःख।" भगवान् ने कहा कि यह क्यों ? भक्त ने कहा कि तेरे नजदीक करने वाली मुझे एक यही चीज नजर आई और जितना तेरे दुःख से प्रेम करता हूँ उतना ही सुख मिलता है। भगवान् ने कहा अच्छा, लेकिन वह

दुःख कब तक रहे? तो कहने लगे—प्रभो! जब तक प्रलय न हो जाय अथवा द्वैत भावना ख़त्म न हो जाय। या जब तक मेरी ख़ुदी गुम न हो जाय और तू ही तू न रह जाय।

तूने दुःखों को मोहब्बत का किया तमगा अता।
सुख तेरी महफ़िल में थे बस इसलिये हो शर्मसार॥

जैसे बच्चे की पहिचान पर माँ ने भयंकर चेहरा उतार लिया था इसी तरह दुःखों से प्रेम करते ही उसमें भगवान् नज़र आ जाते हैं। और वह दुःख सुख में बदल जाता है।

तीसरे महात्मा ने इस प्रकार अपने जीवन के अनुभव को प्रकट किया और कहा कि मैंने ४० वर्ष में यही सीखा है और कुछ आँख उठा कर इस ज्ञान की देवी की तरफ झाँका और महात्माओं की तरफ भी कि अब उनके सामने पूर्णता (Perfection) का सर्टिफिकेट मुझको ही मिला चाहता है क्योंकि इससे ऊँची मंज़िल न तो कोई है और न ही हो सकती है। सब और शुरू वाले महात्मा इस महात्मा की लाजवाब बातें सुन कर आँख नीची कर चुके थे और वह ज्ञान की देवी भी इन तमाम बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थी कि महात्मा ने अपनी बात ख़तम करते हुए प्रणाम किया और चुप होकर इस विचार में बैठ गये कि अब पूर्णता का सर्टिफिकेट मुझको मिला ही चाहता है और मैं इस यूनिवर्सिटी से पास होकर मुक्त पुरुषों के दफ़्तर में दाखिल हो जाऊँगा।

लेकिन ज्ञान की देवी ने मुस्कराते हुए तीसरे महात्मा जी की तरफ झाँकते हुए कहा कि बेटा! कुछ और भी सीखे हो या इतना ही? इस आवाज़ को सुन कर महात्मा का बदन पसीना पसीना हो गया और कहने लगे कि माँ! इससे आगे न तो मैंने कुछ सुना ही है और न देखा ही है। अगर यहाँ कोई कसर रह गई है तो आप उसको पूरा कीजिये। हम आपके पास इसीलिये आये हैं।

माताजी ने कहा—नहीं, तुम्हारी मंजिल बहुत ऊँची है। और क्या सीखना चाहते हो?

महात्मा ने कहा:—अगर आगे और कुछ न होता तो आप कभी न पूछतीं कि इसके आगे और क्या सीखा है। हमे उम्मीद है कि आपके पास उस बात को समझ सकेंगे कि जिसको और हर तरह से समझना मुश्किल था।

माता जी ने कहा अच्छा, तुम्हारी यदि यही इच्छा है तो सुनो मैं बताती हूँ।

अव्वल, सब्र की मंज़िल

उन तमाम मंज़िलों से बड़ी है कि जो सब्र के बग़ैर हाथ पाँव मारते हैं, घबराते हैं, चिल्लाते हैं, अपनी बुरी हालत का मुकाबला करते हैं और उसे बदल नहीं सकते। यह अपनी इस घबराहट से दुःख को बढ़ा लेते हैं लेकिन दुःखों को टाल नहीं सकते। उनसे वह अच्छे हैं कि जो सब्र से काम लेते हैं, संतुष्ट रहने की कोशिश करते हैं संतोष (Contentment) उनका शेवा (स्वभाव) है। लेकिन यह पिंजरे में पड़े हुये यद्यपि शिकायत नहीं करते किन्तु इस हालत में तलखी, कड़वाहट का जरूर अनुभव करते हैं। इनके पास खुशी केवल इतनी है कि यह ज्यादा दुःखी नहीं लेकिन दुःख के कम होने का नाम ख़ुशी नहीं है। इनको दुःख का लगातार अनुभव होता रहता है लेकिन उनसे कम कि जो पिंजड़े के पक्षी की तरह फड़फड़ा रहे हैं। यह कड़वी दवा पीते हैं दम घोंट कर, लेकिन कड़वी दवा को कड़वी दवा ही समझते हैं।

दूसरे, शुक्र की मंज़िल

ये सब्र वालों से आगे हैं। यह अपनी हालत में केवल दुःख को कम नहीं देखते बल्कि उसमें ख़ुशी भी लेते हैं। इनकी नजर अपने से गिरी हुई हालत पर रह कर अपनी हालत को अच्छा समझती है।

लेकिन अपने से बड़ी हालत को देख कर इनको भी कमी महसूस होती है। इसलिए जैसे सब्र में तलखी है, कड़वाहट है, मन पर जब्र है, उसी तरह शुक्र में कमी है, तरक्की की इच्छा है, मौजूदा हालत में पूर्ण सन्तोष नहीं है और शुक्र इसलिए है कि इससे ज्यादा नहीं गिराये गए और जहाँ रखे गये हैं यह सब हालतें उन पर मेहरबानियाँ हैं। यह इसके हकदार (अधिकारी) नहीं लेकिन बड़ी हालत को देख कर ये अपनी इच्छा को रोक नहीं सकते और कमी को महसूस करते हुए प्रार्थना करते ही रहते हैं। इसलिए जहाँ कमी का अनुभव है वहाँ तो पूर्णता नहीं और जहाँ पूर्णता नहीं वहाँ पूर्णता का प्रमाणपत्र अभी नहीं मिल सकता। सब्र से हालत बड़ी है लेकिन कमी की वजह से दूसरी हालतों से छोटी है।

तीसरे, दुःख को सुख बनाने की मंजिल

वाह! वाह!! इसका क्या कहना? जहाँ सुख तो सुख है ही लेकिन दुःख को भी सुख बनाया जा रहा है। गोया अन्धेरा रोशनी में बदला जा रहा है, तकलीफ आराम में और गम खुशी में, एवं बन्धन मोक्ष में। यह मंजिल सब्र और शुक्र वालों से बड़ी है क्योंकि सब्र में तलखी है, शुक्र में कमी है और दुःख को सुख बनाने में भी एक बात है कि जिसको मैं तीसरे महात्मा से पूछना चाहती हूँ। वह समझते हैं कि वह पूर्ण हो चुके हैं। इन्होंने कमाल हासिल कर लिया है। लेकिन मेरे ख्याल में इनमें भी जरा कमी है।

ज्ञान की देवी—महात्माजी! आप सुख को सुख बनाते हैं या कि दुःख को सुख?

महात्मा—माताजी! दुःख को सुख बनाता हूँ।

देवी—तुम पूर्णता (Perfection) की तारीफ समझते हो?

महात्मा—जिसमें सिवाय सुख के दूसरे का अनुभव न हो।

देवी—तो ब्रह्म क्या चीज है ?

महात्मा—आनन्द का स्वरूप।

देवी—तो पूर्ण आनन्द का अनुभव ही मोक्ष है जिसमें दुःख का कहीं नाम तक नहीं। अच्छा, यह तो बताओ कि पतंगा दीपक मे गिरते ही मरता है, या गिर कर मरता है ?

महात्मा—गिर कर मरता है।

देवी—और जो कहते हैं गिरते ही मरता है।

महात्मा—मेरे ख्याल में वह ठीक नहीं।

देवी—वह क्यों ?

महात्मा—चूँकि पतंगा गिरता है और फिर मरता है इसलिए गिरने और मरने के दरम्यान जो जलने का समय है वह इस संयोग में भी उसको वियोग का अनुभव कराता है। इतनी समीपता पर भी वह मिला-मिला नहीं कहा जा सकता।

देवी—तो वह संयोग में वियोग हुआ ? इस मिलाप को मिलाप न कहा जा सका।

महात्मा—ठीक है।

देवी—तो तुम दुःख को सुख बनाते हो या कि सुख को सुख। अगर तुमने सुख को सुख बनाया तो बनाया ही क्या ? और अगर दुःख को सुख बनाया तो दुःख को अनुभव कर ने के बाद सुख बनाया या बिना अनुभव किये ?

महात्मा—(चौंकन्ने हो कर नीची नजरों से) दुःख का अनुभव करने के बाद।

देवी—अच्छा, तो तुमने दुःख को अनुभव किया, और फिर सुख बनाया। तुम्हें दुःख को सुख करने में कितनी देर लगी ?

महात्मा—फौरन ही।

देवी—तो दुःख का अनुभव तुम्हें हो ही गया।

महात्मा कुछ न बोलते हुए चुप बैठे रहे।

देवी—बोलते क्यों नहीं ?

महात्मा—जी हाँ, अनुभव तो जरूर हुआ।

देवी :—तो जैसे पतङ्गा गिर कर मरा, इसी तरह आपका दुःख दुःख होने के बाद सुख हुआ। इसलिये इसमें यही कमी है कि तुमको भी दुःख का अनुभव होता है चाहे वह कितने ही अल्प समय के लिए हो। और यह भी पूर्णता में थोड़ी कमी है। कोशिश अभी जारी है। खुदी का अंश अभी मौजूद है (यद्यपि जली हुई रस्सी की तरह)। पूर्णता के करीब यद्यपि यह हालत है लेकिन पूर्ण नहीं। यहाँ परवाना शमा से है लेकिन जला नहीं। कम-से-कम के बराबर दूरी अभी बाकी है। यह मंज़िल सब मंज़िलों से बड़ी है लेकिन केवल इसी से छोटी है। पहुँच कर मनुष्य को दुःख और सुख से सरोकार बिलकुल ही नहीं रहता, संयोग और वियोग का ख्याल ही नहीं रहता, ग्रहण और त्याग व्यर्थ हो जाते हैं। और उसके ध्यान में इतना जुड़ जाता है कि उसे अपना आपा भी नहीं रहता और यहाँ उसकी यह हालत हो जाती है कि—

न तन देखता हूँ न जाँ देखता हूँ।
कि एक बहरे हस्ती रवाँ देखता हूँ॥

चुनां पुरशुद फ़िज़ाए सीना अज़ दोसत।
ख़्याले ख़ेश गुमशुद अज़ ज़मीरम ॥

(अर्थात् मेरा हृदय प्याले के ख्याल से यहाँ तक भर गया कि उसमें अपना ख़्याल भी आना मुश्किल हो गया)।

एक महात्मा ने "अहं ब्रह्मास्मि" कहा। वे ईर्ष्या को "दासोऽहम्" का सबक पढ़ाते थे। इनकी यह आवाज़ सुन कर शिष्य घबरा गये और जब यह होश आये तो उन्होंने कहा कि हमको तो दासोऽहम् का सबक सिखाया जाता है और स्वयंम "शिवोऽहम्" कहा जाता है। उन्होंने कहा, "नहीं ऐसा नहीं हो सकता। जो मैं अब हूँ वह शिवोऽहम् नहीं कह रहा। इस अहं भाव मे शरीर मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि का अनुभव मौजूद है, अर्थात अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोषो का ख्याल मौजूद है। मेरी यह अहंता इन सबका सम्बन्ध लेकर है और इनमे से किसी को भी शिवोऽहम् कहने का हक़ नहीं चूँकि यह तमाम चीजें उपाधिकृत हैं और माया के बन्धन में हैं। इसलिये इस अवस्था मे दासोऽहम ही कहना ठीक है। आइन्दा अगर मैं शिवोऽहम् कहूँ तो मुझे तलवार से काट देना।

महात्मा पर एक दिन फिर वही हालत आई और वह शिवोऽहम् कहने लगे तो शिष्यों ने तलवार चलाई लेकिन नहीं लगी। अपना सा मुँह लेकर बैठ गये। जब महात्मा होश में आये, उन्होंने शिकायत की कि आज आपने फिर शिवोऽहम् कहा तो वह कहने लगे कि मुझे क्यो नहीं मारा, मैं तुम पर नाराज़ होता हूँ। शिष्यों ने कहा कि हमने हर चन्द कोशिश की, तलवार आप पर काम नहीं कर सकी तो महात्मा हँस कर बोले उस समय शिव—(कल्याण स्वरूप) ही इस शरीर के अन्दर 'शिवोऽहम्' कह रहा होगा या उस समय मैं शिव ही होऊँगा क्योंकि उस समय देहाध्यास था ही नहीं और न ही द्वैत अद्वैत की भावना सामने थी। शिव अपने

को शिव कह रहे थे न कि देहाध्यास में पड़ा हुआ अहम् भाव। बस इस हालत में दुःख सुख का अनुभव ही कहाँ होता है। जो है सो एक है। अगर एक कुल में पसर गया है और अनेक बन गया है तो वह अनेक हर जगह पर एक ही है। किस वस्तु के सामने आकर उस वस्तु का पता चलता है। लेकिन जब जीव अपना आप छोड़ कर उस कुल से एक हो जाता है तो इसको दुःख इसलिये नहीं होता कि वह दुःख से एक होता है और सुख इसलिये नहीं कि सुख से एक होता है। वह अपने सामने रख कर किसी चीज़ को नहीं देखता बल्कि खुद ही एक चीज़ बन जाता है।

जब जीव उसकी अनन्त सत्ता को देख कर या उसके चेहरे को देख कर अपने आपको शून्य कर देता है तो फिर हस्ती के लिये सुख और दुःख कहाँ रह सकते हैं। और जो इसके शून्य रहने पर बाकी रहता है वह खुद कुल होता है या आप ही आप होता है। उसको भी दुःख का अनुभव होना असम्भव है।

हस्ती को तो दुःख इसलिए नहीं कि उसको न तो कोई मिटा सकता है और न कोई उसके प्रतिकूल हो सकता है। और हस्ती में दुःख इसलिये नहीं कि वह है ही नहीं और अगर किसी अवस्था में जीव, ईश्वर और प्रकृति तीनों ही रहते हैं तो जीव भगवान की तरफ देखेगा या दुनिया की तरफ। दुनिया में तो मन, बुद्धि की मंज़िलें काट कर भगवान की ओर लगा है फिर भगवान की ओर न लग कर किसकी ओर लगे? मन एक है, एक समय में एक ही तरफ लगेगा या तो भगवान को देखे या दुनिया के दुःख सुख को। पतङ्गा इतने बड़े फ़ानूस में केवल छोटे से प्रकाश को देखता है और किसी वस्तु को नहीं। बुलबुल फूल को देखती है और किसी चीज़ को नहीं। अगर बुलबुल को कांटा नज़र आ रहा है या पतंग को मट्टी का दीपक तो इसके यह माने हैं कि उनकी नज़र फूल और प्रकाश से फिसल गयी है।

वजूदे खार क्या है गुल से नजरों का फिसल जाना।
वगरना आँख मे बुलबुल के यह काँटा अयाँ क्यों हो ?

अव्वल तो उसके प्यारों का दुःख और सुख ही बदल जाता है क्योंकि सांसारिक दुःख तो इसलिये दुःख नहीं रहते कि वह सुख की इच्छा नहीं करते और जिस प्यारे की तरफ़ चलते है उसको चाहते हुए इन चीजों का ध्यान छोड़ देते हैं। अब उनके दुःख और सुख की कसौटी यह हो जाती है—

जिन्नते मन रुए यारो दूरी अज़ वै दोज़खे।
वस्ले ऊ बाशद चु नूरो हिज्र ऊ बाशद चु नार॥

(अर्थात मेरा स्वर्ग प्यारे का चेहरा है और उससे दूर हो जाना मेरा नर्क है। उसका मिलाप मेरा प्रकाश है, ज्योति है और उसका वियोग आग है, जलन है)।

और जब प्यारे का चेहरा हमेशा सामने रहने लगता है तो इस सुख दुःख का (Standard) स्टेंडर्ड भी बदल जाता है, गोया यह मनुष्य की वह हालत है कि जहाँ प्यारे के सिवाय कोई दूसरा नज़र ही नहीं आता।

जिधर देखता हूँ जहाँ देखता हूँ।
मै तेरी ही हस्ती अयाँ देखता हूँ॥
आशना अपनी हक़ीक़त से हो ऐ देहक़ां ज़रा।
दाना तू खेती भी तू बारां भी तू हासिल भी तू॥
काँपता है दिल तेरा अन्देशए तूफ़ाँ से क्या।
नाखुदा तू बेहर तू किश्ती भी तू साहिल भी तू॥
देख आकर कूँचए चाके गिरेबाँ भी कभी।
कैस तू लैला भी तू सेहरा भी तू मेहमिल भी तू॥
शोला बन कर फूँक दे खाशाके गैर अल्लाह को।
खौफ़े बातिल क्या कि है गारत गरे बातिल भी तू॥

दुई अज़ीदिल ब दर करदम यके दीदम दो आलम रा।
यके बीनम यके गोयम यके दानम यके खानम॥

(अर्थात् मैंने द्वैत को दिल से निकाल दिया और दोनों जहान को एक देखा। अब मैं एक देखता हूँ, एक कहता हूँ और एक ही पढ़ता हूँ।)

जब हृदय पर सिवाय एक के और कुछ न रहेगा तो बाहर भी सिवाय एक के और कुछ नजर न आयेगा। इसलिए पूर्ण अवस्था यह है कि जहाँ दुःख सुख में अन्तर न रहे। केवल एक ही एक रह जाय।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण-मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण-मेवावशिष्यते॥

(अर्थात् वह हर तरह पूर्ण है और पूर्ण में कोई कमी नहीं सकता।)

इसलिये ऐ महात्माओ! सांसारिक दृष्टि से संसार के दुःख को कम करने के लिए पहले सब्र है, फिर शुक्र है, और फिर उसकी मर्ज़ी पर खुश रहना है और इसके बाद अपनी मर्ज़ी को छोड़ कर उसकी मर्ज़ी में एक हो जाना है। और यही प्रेम की सर्वोच्च मञ्ज़िल है। यह कहना कि मुझमें खुशी नहीं रही यह भी खुदी का ही अंश है। जहाँ खुदी के न रहने का भी ख्याल नहीं है वहाँ खुदी नहीं है। जहाँ दुःख का सुख बनाने का ख्याल भी नहीं है वही सुख है। यानी जो सामने आ गया है उसके प्रतिकूल भावना भी पैदा नहीं होती और न उसको अनुकूल करने का ख्याल ही पैदा होता है।

एक महात्मा जङ्गल में वृक्ष से तकिया लगाये बैठे थे। उनके अन्दाजे मस्ताना को देख कर एक बादशाह को ईर्ष्या आई कि जितना यह खुश है, उतना मैं भी नहीं। देखें! इनकी खुशी का कारण क्या है, और यह अपनी खुशी में कहाँ तक पक्के हैं? नज़दीक जाकर पूछ ही लिया—"महाराज! आपका क्या हाल है"? महात्मा इतने

लगे.—"वाह ! वाह !!" राजा को ख्याल आया कि मट्टी पर लेटे हुए, वृक्ष से तकिया लगाये, बदन पर कपड़ा न होते हुए मैं इस व्यक्ति के मुँह से वह आवाज सुन रहा हूँ कि जो आज तक मेरे मुँह से भी असली मानों में नहीं निकल सकी। मै भी वाह ! वाह !! नहीं कह सकता। मुझे इतना सामान रखते हुए भी हजारों भय, लाखो इच्छायें, और करोड़ों त्रुटियाँ हैं। मैं इन महात्मा की वाह ! वाह !! निकाल कर ही छोड़ूँगा।

क्या खबर जाहिदे काने को कि क्या चीज है हिर्स।
उसने देखी ही नहीं कीसये जर की सूरत॥

(अर्थात् त्यागी महात्मा को तृष्णा और लालच की क्या खबर हो जब कि उसने सोने से भरी जेब नहीं देखी।)

बादशाह ने तुरन्त आज्ञा दी कि मुझसे बेहतर सजा हुआ हाथी लाया जाय। हाथी आ गया। "महात्मा को इस पर बैठा दो"। नौकरों ने आज्ञा पालन मे महात्मा को वहाँ बिठाया। महात्मा वहाँ पर भी टांग पर टांग धर कर पड़ गये और कहने लगे वाह ! वाह !! राजा ने कहा कि अब वाह ! वाह !! क्यों न कहा जाय। मट्टी से हाथी पर उठाये गये। फिर अपने महल मे ले गया। हर तरह के आराम के सामान मुहैय्या किये, मखमली बिछौने, गद्दे तकिये, दीपकों की जगमगाहट, अप्सराओं का नाच, राग रंग, गाने आदि, सामने पेश किये गये। महात्मा वहाँ भी आ कर टांग पर टांग धर कर पड़ गये और कहने लगे वाह ! वाह !! नौकर खाने को लाये, न खाया। राजा ने आकर स्वयम् खिलाना शुरू किया तो खाने लगे। सब चीजों की तरफ नजर भर कर देख लेते और वाह ! वाह !! कह कर खत्म कर देते। छः महीने इसी ऐशोआराम मे काटे। बादशाह ने महात्मा को वह चीजें दिखाई कि जो उन्होंने जन्म भर न देखी थीं। जब राजा ने देखा अब महात्मा बिलकुल इस चक्कर में फँस गये हैं कि अब इनकी वाह ! वाह ! को तोड़ने का वक्त है, फौरन हुक्म दिया

कि इनको उठा कर उसी जमीन पर डाल दिया जाय कि जहाँ यह पेड़ से तकिया लगाये पड़े थे। हुक्म की तामील में लोगों ने वैसा ही किया। महात्मा को वहीं छोड़ आये। थोड़ी देर के बाद राजा वहाँ पहुँचे और सोचा अब तो महात्मा मुझसे प्रार्थना करेंगे कि मुझे वहीं ले चलो। लेकिन जब राजा वहाँ पहुँचा तो क्या देखता है कि वह उसी प्रकार टाँग पर टाँग धरे पड़े हैं। बादशाह ने जाकर पूछा महाराज! क्या हाल है? तो जवाब दिया कि "वाह! वाह!!"

बादशाह को बड़ी हैरानी हुई कि आखिर इनकी वाह! वाह!! का रहस्य क्या है? मैं तो समझता था कि यह बहुत दुःखी होंगे लेकिन इनकी वाह! वाह!! तो उसी तरह है। यह वाह! वाह!! तो मुझे भी नसीब नहीं। आखिर पूछा—"आपकी वाह! वाह!! का भेद क्या है और आप कभी नाखुश नजर क्यों नहीं आते? आपको शाही सामान और खाक का बिस्तर कैसे बराबर है? आपको दुःख और सुख समान क्यों है?

महात्मा कहने लगे, न तो हम किसी वस्तु को पाने की इच्छा करते हैं इसलिये किसी को हासिल करके खुश नहीं होते, और न हीं किसी चीज के जाने की फिक्र करते हैं इसलिये किसी चीज के जाने पर दुःखी भी नहीं होते। जब इच्छा ही नहीं तब अनुकूल और प्रतिकूल नहीं। जब अनुकूल और प्रतिकूल नहीं तब सुख और दुःख नहीं। और जब दुःख और सुख नहीं तब परमानन्द सामने है।

ख्वाब का कासा यहाँ ताजे शाही [illegible] है।
यह ममज्जुल [illegible] नजरी दिल तेरा [illegible] करा॥

(स्वप्न का शाही ताज और भीख माँगने का प्याला, [illegible] नज़र के लिये दोनों बराबर हैं इसलिये हमको कैसा दुःख और सुख से क्या मतलब?)

दूसरे जो कुछ ईश्वर की तरफ़ से आता है वह ऐन ठीक है इसलिए दुःख को दुःख नहीं कह सकते और सुख को सुख। उसका कांटा और फूल दोनों बराबर हैं। उसके भेजे वियोग और संयोग बराबर हैं। क्योंकि वियोग काल में वह मन में रहता है, और संयोग काल में आँखों के सामने। हमें इससे मतलब नहीं कि वह क्या भेजता है, बल्कि हमें उससे मतलब है कि जो भेजता है। इसलिये हम दुःख को दुःख कैसे कहें और सुख को सुख कैसे? जबकि एक ही मेहरबान की तरफ से दोनों हालतें आ रही हैं। उसने ज़मीन दी तो वाह! वाह! महल दिये तो वाह! वाह!, और फिर ज़मीन दी तो वाह! वाह! हमारा काम तो उसकी इच्छा को देखना है। और उसकी मर्ज़ी पर ख़ुश रहना है। अब उसकी मर्ज़ी है कांटा भेजे या फूल, दुःख भेजे या सुख। खाँड की बनी हुई चीजें सब खांड ही होती हैं।

मेरे श्री गुरुदेव फ़रमाया करते थे कि अपनी मौजूदा हालत की नबदीली वर्तमान अवस्था का परिवर्तन न चाहना ही सुख है। जहाँ प्रभु ने रखा है वही हालत सबसे बड़ी है और जहाँ वह रखेगा वही ठीक होगा।

"I am content with what God has given me as my share and commit to my Creator my every care To do good in the past has been indeed His Will. He will do good as well in what is to come still".

अक्सर यह भी फ़रमाया करते थे कि मैं जहाँ बैठा हूँ इससे बड़ी मंज़िल कोई नहीं लेकिन इससे छोटी भी कोई नहीं और इस जैसी भी कोई नहीं अर्थात् बड़ी नहीं तो पाने की इच्छा नहीं, छोटी नहीं तो गिरने का भय नहीं, अपने जैसी नहीं तो किसी के बढ़ जाने की ईर्ष्या नहीं। इसलिये द्वैत खत्म है। केवल एक है या वह भी नहीं क्योंकि यहाँ एकता भी अपेक्षा से

रहित हो जाती है। द्वैताभाव के कारण प्रतिकूल उड़ जाता है अर्थात् अपनी इच्छा का शून्यत्व प्राप्त होता है जिसके कारण मानने आने वाली वस्तु प्रतिकूल तो क्या अनुकूल भी नहीं रहती। कारण यह है कि अनुकूलता ही के छाये का नाम प्रतिकूलता है जिसने अनुकूल करना है वह तो रहा ही नहीं। अब जो मानने आया वह प्रतिकूल थी अपेक्षा से नहीं। इसलिये जो कुछ वह है सुख दुःख से ऊपर है इसलिये परमानन्द है जिसमें प्रयत्न का अभाव है।

पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
इफलास में इक़बाल में अदबार में खुश हैं॥
गर माल दिया यार ने तो माल में खुश हैं।
बेजर जो किया तो उसी अहवाल में खुश हैं॥
मैदान में बाजार में चौपाल में खुश हैं।
गर यार की मर्जी हुई सर जोड़ के बैठे॥
घर बार छुड़ाया तो वहीं छोड़ के बैठे।
गुदड़ी जो उढ़ाई तो वहीं ओढ़ के बैठे॥
और शाल उढ़ाई तो उसी शाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं॥

इस प्रकार शिक्षा देते हुए उस ज्ञान के देवता ने महात्माओं के अपने-अपने अनुभवों की दाद देते हुए नये ख्याली भेदों से वाकिफ किया और उन्हें आशीर्वाद देकर अपनी-अपनी जगह भेज दिया।

इन बातों पर अमल करने से हर मनुष्य अपनी-अपनी काबलियत के मुताबिक संसार के दुःख को कम कर सकता है और इस प्रकार अपने अज्ञान, अपनी इच्छाओं, रजोगुण और तमोगुण, दुःख और नाश के शत्रुओं को जीत कर, एक विजयी के समान अपना जीवन व्यतीत कर सकता है।

जब मनुष्य चित्त की एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और दुःख को सुख की शक्ल में बदल डालता है तो उसका आनन्द परमानन्द की शक्ल अख्तियार कर लेता है। जब तक जीता है, जीवन-मुक्त के समान जिंदगी व्यतीत करता है, जब मरता है, क़तरे की तरह समुद्र मे लीन हो जाता है।

सारांश सब बात का यह है कि जीव के अन्दर जो परमानन्द को हासिल करने की इच्छा बनी है उसकी पूर्ति के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं जिनमें से द्वैत और अद्वैत की बारीकियों और योग की कठिन सीढ़ियों पर न चल सकते हुए भी मनुष्य, "आत्म-विजय" मे बताये हुए रास्तों पर चल कर उसी आनन्द को प्राप्त कर सकता है जिसको वह लोग अपने-अपने रास्तों पर चल कर पाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकृति होने से भिन्न-भिन्न रास्ते बन गये हैं; लेकिन हर रास्ता एक ही मंज़िल पर पहुँचाता है।

"आत्म-विजय" के बाक़ी तीन भागों मे इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दिलाया जायेगा कि जिससे जिंदगी की हर मुश्किल आसान हो सके और मनुष्य संसारी झमेलों में रहता हुआ भी परमानन्द को प्राप्त कर सके। इस समय दुनिया को ऐसे मिशन की आवश्यकता है कि जिसमें व्यवहार और परमार्थ दोनों काम साथ-साथ रहें, लक्ष्मी और सरस्वती इकट्ठी रहें, न तो दुनिया मे इतने अधिक लिप्त हो जाये कि भगवान् को ही भूल जाएं, और न भगवान को पाने के ऐसे मार्ग ग्रहण करें कि सांसारिक कर्त्तव्य ही छूट जांये। जैसे चेहरे मे बाल, और बालों से चेहरा सुन्दर लगता है उसी प्रकार भगवान और माया का सम्बन्ध रहे। न तो माया को निकाल कर भगवान् के शृंगार को कम करें और न भगवान को छोड़ कर भगवान के शृंगार ही मे लग जांये।

——x——

जीवन का भेद

आज प्रातः मैं अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ था और सामने एक पत्ती पर ओस की बूंद सूरज की किरणों को अपने अन्दर धारण कर अपने सफेद वस्त्रों में रँगारंग की दुनिया को छिपा रही थी। उसको इस झलमलाहट पर और अपने चमकदार होने पर इतना गौरव था कि मानो संसार में उसके सौंदर्य को शर्माने के लिए कोई दूसरी चीज नहीं हुई। वह जहाँ बैठी हुई थी वह अत्यन्त कोमल रंगीन व लचकदार चीज थी। दूसरे अर्थ में पुष्प की पत्ती पर बड़े आराम से तकिया लगाये बैठी थी। मैं उसकी तरफ बहुत देर तक देखता रहा लेकिन उसने अपने आपको छोड़ कर मेरी तरफ देखना न चाहा। मैंने उसे बुलाने का साहस न किया, केवल इस भाव से कि उसके सुख और उसकी एकाग्रता, अभिमान, गौरव में फर्क न आ जाय।

थोड़ी देर के पश्चात् मैंने उसे यूं राग अलापते सुना। आज जीवन का तमाम सुख मेरे पास है। तरक्की के आला दर्जे पर मैं खेल रही हूँ। मेरी ज़ीनत, मेरी रौनक़, मेरे घर की शोभा आज मेरे ही दिमाग़ को चकित कर रही है कि क्या कोई दिन ऐसा भी आने वाला था कि जब मैं जीवन को क़ायम करने के प्रयत्न (Struggle-for Life) में इस ऊंचे दर्जे पर पहुँच सकती? मैं फूल की पत्ती पर विश्राम कर रही हूँ। मेरी चमक, मेरी ढलक ज़रपाशी (यानी सोने की वर्षा) कर रही है और जहाँ मैं बैठी हूँ वह फूल की पत्ती है कि जिसकी सुगन्ध, कोमलता और रंग उन्नति की अन्तिम सीढ़ी को दिखा रही है। मैं धन्य हूँ, चारों तरफ सिवाय आनन्द और ख़ुशी के कुछ नज़र नहीं आता। वह गा रही थी—

मरो दो रक़्सो शादो दम बदम है।
तफ़क्कुर दूर है और ग़म को रम है॥
ग़ज़ब खूबी है बेरूँ अज़ रक़म है।
यक़ीनन जान तेरी ही क़सम है॥
गुलों से पुर हुआ है दामने शौक़।
फ़लक ख़ेमा है कीवों पर अलम है॥

(अर्थात् मेरे चारों तरफ सिवाय आनन्द के कुछ भी नहीं)

मुझे उसके छोटे से 'होने में'' एक डगमगाती हुई अनन्त चीज़ नज़र आई। आश्चर्य यह हुआ कि उसके छोटे से होने में इतना बड़ा होना कैसे समा गया। जैसे बीज के अन्दर वृक्ष की बहुत बड़ी दुनिया रहती है उसी प्रकार उसके छोटे से होने में अभिमान की इतनी बड़ी दुनिया नज़र आई कि जिससे यह पता चला कि परिच्छिन्न (limited) में अनन्त चीज़ भी रह सकती है। उसने इसको चारों तरफ़ से घेर रखा था और यह उसमें इस तरह अपना जी बहला रही थी जैसे कोई छोटी सी चीज़ समुद्र के सीने पर तैर रही हो। वह पास की चीज़ों को कुछ इस प्रकार देख रही थी कि जैसे उसका

होना न होने के बराबर होता हो। मैं लगातार उसकी तरफ देख रहा था। इतने में न मालूम क्या हुआ कि उसका सुनहरी रंग अजीब तरह का पीला पड़ने लगा। उस खुशी का नाम थरथराहट में बदल गया। वह दूर पास वाली चीज़ को अपने से अच्छा समझने लगी। अब उसके अन्दर अभिमान की अनन्त दुनियाँ की तरह भय की दुनियाँ कायम हो रही थी। वह कुछ ऐसी अवस्था में थी कि अब उसे उस भय से मुक्त कराने वाले की ज़रूरत थी।

यह सब क्यों हुआ? उसके अभिमान को चकनाचूर करने वाली कौन चीज़ थी? उसके तमाम सुख को किसने नाश किया? केवल हवा की तेज़ लहरों ने कि जिन्होंने उसके कान में आकर कहा कि जहाँ तू बैठी है और जिस संयोग में नित्य सुख के स्वप्न देख रही है मैं उसे नाश किये बग़ैर न रहूँगी। मेरी आने वाली दूसरी लहरें तुझे यहाँ से गिरा कर ही छोड़ेंगी। जिस प्रकार फूल कई काँटों पर साया हुआ है उसी प्रकार तेरी खुशी के फूल ग़म के काँटों में बदल जायेंगे। यह संयोग तुझे भयंकर वियोग का मुँह दिखायेगा और तू फूल की पत्ती से फिसल कर ख़ाक में मिल जायगी। जब तू सुख और ऐश्वर्य की चमकती हुई बूँद न रहेगी बल्कि वह आँसू की बूँद होगी कि जिसका बिछौना बजाय फूल की पत्ती के ज़मीन की सख्त मट्टी होगी। इस तरह तेरे लिये दो दुःख होंगे—एक तो सुन्दर सुख का वियोग, और दूसरे जीवन का अन्त। इस हालत को देख कर बेचारी ने फूल की पत्ती पर ज़ोर से चिमटना चाहा और फूल के कोमल वस्त्रों में अपनी मोह रूपी अंगुलियों को इस ज़ोर से दबाना चाहा कि लाख हवा चलती रहे लेकिन उसको वहाँ से न उठा सके। इधर न मालूम क्या हुआ कि सामने एक मुर्झाई हुई फूल की पत्ती टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ी और उधर सूरज की किरणें भी ज़्यादा गर्म होती गईं। इधर हवा की सरसराहट भी बढ़ गई। और इस बेचारी के भय का ठिकाना न रहा। इसका वह सुनहरी

मजक को दिखाता हुआ भी भय से पीला पड़ने लगा। इसको इस दुःख मे मुक्त करने वाला कोई न था। इसके आगे तीन भय थे—अव्वल, हवा मुझे जरूर गिरा कर रहेगी। मुझे यहाँ चैन से बैठने न देगी। मेरी थरथराहट मुझे फिसला कर छोड़ेगी। क्या मुझे इस खाक मे मिलना पडेगा ? ओफ ! फिर क्या होगा ? क्या सचमुच मेरे आराम की दुनिया तबाह हो जायगी ? क्या मेरे मीठे स्वप्न कड़वी जागृति को लायेंगे ?

चूँ नशीनम दर चमन बर बर्गे गुल लरजाँ शुदा
चूँ नसीमे सुभोदम ख़ाहद मरा बरबाद कर्द

अर्थात् इस वाटिका मे इस पुष्प की पत्ती पर निश्चित होकर कैसे बैठ सकती हूँ जब कि प्रातःकाल की हवा कसम खाकर चल रही है। वह मुझे नष्ट किये बग़ैर न रहेगी।

दर तच्युन ईं चुनी गलतीदा अम दर हाले खेश।
बाज़ुए मन क़ुव्वते परवाज़ रा बरबाद कर्द॥

(मैं इस चक्कर मे कुछ इस तरह फँस गई हूँ कि मेरे परों में अब उड़ने की शक्ति भी नहीं है।)

दूसरे, यह कि अगर मैं न भी गिरी तो भी सामने की गिरती हुई फूल की पत्ती यह शिक्षा दे रही है कि जहाँ मैं बैठी हूँ वह भी मुर्झाने वाली चीज है। अब या तो यह मुझसे जुदा हो जायगी और या मैं इससे।

तीसरे, मेरे नाश होने के सामान दो वजह से बढ़ते जाते हैं—एक तो हवा की तेजी से और दूसरे सूरज की गरम किरणों से। तब मेरे भय का क्या ठिकाना कि जहाँ सिवाय दुःख के कुछ रहा ही नहीं। शायद मैं मरने से इतना न डरती अगर पुष्प की पत्ती पर मुझे इतना आराम न मिलता। इस सुख की याद मेरे आने वाले दुःख को और भी बढ़ा रही है। वियोग की आग और मौत का भय

इसके सामने था जिसने इसके अभिमान की दुनिया को तबाह कर डाला। अब इसके अन्दर यही बातें रह गईं—अव्वल, मेरा यह सुख बना रहे। दूसरे, मैं यहाँ से न गिर सकूँ। तीसरे, फूल न मुर्झा जाये। कहीं मेरे अस्तित्व का खात्मा न हो जाय जो कि इस आराम से जुदा करने वाला है।

इन बातों ने बेचारी को परेशान कर रखा है। इस समय उसके अन्दर एक सच्ची इच्छा पैदा हो गई थी और वह यह कि कोई उसके सामने जीवन के भेद को खोल दे। वह रो रो कर कह रही थी···

आह राजे जिन्दगीअम शोरसे हंगामाए।
आह नक्शे हस्तिए मन फितनाए अफसानाए॥

(आह! मेरे जीवन का भेद एक शोरोगुल और दुःख की धड़कन के सिवाय और कुछ भी नहीं और यह मेरा चमकता हुआ यानि सुन्दर अस्तित्व एक झूठे स्वप्न और नाश के सिवाय कुछ भी नहीं)।

इस बेचारी ने जीवन का भेद नाश और मौत समझा। इस वास्ते वह इतने सौन्दर्य को साथ रखती हुई भी निराशा के समुद्र में बह रही थी। वह हसरत भरी आँखों से कभी फूल और कभी अपनी तरफ देखती थी। उसको जीवन और ऐसे नक्शे के बनाने वाले पर बार बार यह ख्याल आता था कि सृष्टि की नींव रखने वाले ने इस संयोग को नित्य और इस जीवन को न खत्म होने वाला क्यों न बनाया? उसका वश चलता तो फूल, उसके संयोग और अपने जीवन को नित्य बना डालती। लेकिन दूसरी ओर वास्तविक बातें उसके इन भावों को खाक में मिला रही थीं। अब उसके अन्दर अभिमान की जगह बेबसी और आजिजी आ चुकी थी। वह इस नक्शे को देखती हुई भी सँवार न सकती थी। वह अपनी चमकदार दुनिया में विनाश का रंग देख रही थी और यह कह रही थी।

हर शाख पर है बाग में सय्याद की निगाह।
मतलब यह है कहीं न मेरा आशियाँ रहे॥

अर्थात् केवल मेरे ही जीवन का यह हाल नहीं बल्कि इस पुष्पवाटिका में हर पुष्प और हर ओस की बूँद का यही हाल है। जो अभी तक ख़ुश नज़र आ रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे इन बातों से मुक्त हैं बल्कि उसका यह अर्थ है कि इन्होंने अभी इस बात को समझा नहीं है। इसलिये मैं अपने दिल को कहाँ लगाऊँ? हर संयोग वियोग का मुँह दिखा रहा है। हर जीवन का प्रकाश मृत्यु की आँधी में बुझने वाला है। उफ़! मैं और मेरा दुःख।

बेचारी का जीवन यद्यपि एक जल की बूँद के समान था लेकिन इस समय निराशा के मूसलाधार आँसू उसके नेत्रों से बह रहे थे। न तो इस जीवन का छोड़ना उसके हाथों में था और न ही नित्य जीवन की कोई झलक उसके सामने थी। वह ज़ाहिरा इतने सुख में होती हुई भी उस सुख को अनुभव न कर रही थी। दूसरों की दृष्टि में वह विकासवाद (Evolution) की उच्च श्रेणी में बैठी हुई थी लेकिन वह उसके अन्दर अपने आपको अति छोटी से छोटी चीज़ समझ रही थी। अब उसके अन्दर वैराग्य की झलक नज़र आने लगी लेकिन वह कहती थी कि इस जीवन को छोड़ने पर दूसरा भी तो कोई जीवन सामने नहीं। लेकिन उसका यह तमाम वैराग्य इसलिये न था कि वह इन चीज़ों को तुच्छ समझने लगी थी बल्कि इसलिये कि वह इनमें रह न सकती था। उसके अन्दर जिज्ञासा पैदा हो गई थी कि कोई उसके सामने जीवन के भेद को खोले और उसको दुःख के इस भयंकर समुद्र से बाहर निकाले। प्रकृति (Nature) के क़ानून के मुताबिक ही हर सच्ची इच्छा का जवाब मिलता है।

गुम रही ख़ुद मंज़िले मक़सूद की है रहनुमा।
ख़िज़्र मिल जाते हैं जिनको रास्ता मिलता नहीं॥

(अर्थात् जब मनुष्य रास्ता ढूँढ़ता ढूँढ़ता थक जाता है और

उसे रास्ता नहीं मिलता तो दैवयोग से उसे कोई राह दिखाने वाला आप ही आ मिलता है)।

मेरे श्री गुरुदेव भगवान् बाबाजी महाराज अक्सर फ़रमाया करते थे कि तीव्र इच्छा और प्राप्ति दो चीज़ें नहीं—ख़्वाह इच्छा दुनिया की ठोकरें खाकर पैदा हो और या ईश्वरीय कृपा से प्राप्त हो। वेदान्त में "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" का भावार्थ यही है कि ब्रह्म को पाने की इच्छा करे जो नित्य, पूर्ण और सच्चिदानन्द स्वरूप है। जिसके पा लेने पर फिर कुछ पाना बाकी नहीं रहता। और न ही किसी चीज़ के खोने का भय रहता है। यह जिज्ञासा जब तीव्रतर होती है तब मनुष्य के अहंकार का नाश हो जाता है। मनुष्य एक ही समय में दो चीज़ों का अनुभव नहीं कर सकता—या उसको देखे या देखने वाले को देखे। अगर उसको देखा तो देखने वाला कहाँ रहा? और अगर देखने वाले को देखा तो फिर देखा किसको? जिज्ञासा की तीव्रता (God-Realization या ब्रह्म प्राप्ति) का अनुभव ऐसे कराती है कि जिस प्रकार भोजन के पश्चात तृप्ति सामने आती है। यह जिज्ञासा दूसरे शब्दों में प्रेम, इश्क़ या (Divine Love) भी है। प्रेम को सिवाय प्रियतम के किसी और चीज का अनुभव नहीं हो सकता और अगर होता है तो प्रेमाभाव के कारण। ख़ैर, इस मार्ग पर अपना होश लेकर चलना है और अन्त में उससे वाक़िफ़ होकर इसी होश को खो देना है और या होश को खोकर उसे पाना है।

मुझसे किसी ने पूछा—"महाराज! आपका क्या हाल है" मैंने कहा—"मैं तो आपको देख रहा हूँ, अपना हाल कैसे बताऊं?" उसने कहा—"अपनी तरफ देख कर अपना हाल बताइये" तो मैंने कहा कि अपने आपको देखता हुआ किसी और को बता कैसे सकूंगा जब कि आप सामने न होंगे?

प्रेम गली अति साँकरी या में दो न समायें।

हां, जो कभी कभी समाये नजर भी आते हैं उनका अस्तित्व इसी तरह रह जाता है जैसे खांड के दो खिलौने हों—जो देखने में दो नजर आँए लेकिन वास्तव में एक हों।

इस समय ओस की बूंद की जिज्ञासा सच्ची थी। उसे राह दिखाने वाले की आवश्यकता थी। वह इस अग्नि सागर से पार होना चाहती थी। वह सुर्ख फूल की पत्तियों पर आग के अंगारों के समान जल रही थी, पुष्प की कोमल रगें उसके सीने में नश्तर चुभो रही थीं। कभी-कभी उसको कांटे भी नजर आते थे लेकिन उन कांटों को देख कर जरासी मुस्कराती थी कि तुम में और पुष्प में इतना ही भेद है कि इससे दिल लगा कर मैं आज दुःख के तूफान में बही जा रही हूँ और तुमसे मन न लगा कर अभी तक इस चोट से बची हुई हूँ। फिर फूल को दुःख देने वाला कहूँ या तुमको? तुम ज्यादा चुभने वाले हो या यह? इतना सोचते सोचते उसके सामने वह जीवन का भेद जानने वाले आ गये।

महात्मा—तुम इस तरह उदास क्यों हो? कँपकँपी का कारण क्या है? यह थर-थराहट और अश्रुधारा किस लिये है?

बूंद—महाराज! मैं जीवन से निराश हो चुकी हूँ। मुझे सुख किसी भी जगह नजर नहीं आता। मौत का भयंकर दुःख मेरे सामने है।

महात्मा:—आखिर तुम्हारे दुःख का कारण क्या है?

बूंद—पुष्प से प्रेम और जीवन की इच्छा।

महात्मा—तुम पुष्प से प्रेम क्यों करती हो और जीवन की इच्छा क्यों करती हो?

बूंद—महाराज! मुझे पुष्प अच्छा लगता है और नाश का भय जीवन की इच्छा कराता है।

महात्मा—तुम्हें काँटे अच्छे क्यों नहीं लगते ?

वृंद—महाराज ! चूँकि यह अच्छे नहीं हैं।

महात्मा—तुम्हें कोई चीज अच्छी क्यों लगती है ?

वृंद—महाराज ! जब कि उससे सुख मिलता है।

महात्मा—तो पुष्प तुम्हें सुख देता है इसलिये अच्छा लगता है और काँटे चूँकि दुःख देने वाले हैं इसलिये बुरे लगते हैं। अब तुम्हारे सामने दो चीजें हैं—एक सुख देने वाला है, एक दुःख देने वाली। एक से तुम अपना आप बचाती हो, दूसरी पर न्योछावर करती हो। शायद अगर मैं तुमको फूल में भी काँटा दिखा दूँ तो तुम उससे भी इसी तरह उपराम हो जाओगी कि जिस प्रकार काँटों से। और अगर काँटों में फूल दिखाऊँ तो सम्भव है तुम काँटों को भी फूल समझ कर प्यार करने लगो। देखो, पुष्प ने तुमको अपने सौंदर्य के जाल में फँसा कर अपना संयोग दिया और तुम बहुत प्रसन्न हुई कि मैं जीवन की वस्तु पा लियो [illegible] में रम गयी। तुम्हें उसकी कोमलता, सुगन्धि और नर्म-नर्म रंगों ने लुभाया। तुम अपना मन उसको दे बैठीं जो मन कि जीवन चार का [illegible] था। अब उसके परिणामी स्वरूप [illegible] ने अपना रंग बदला और संयोग ने अपना वियोग दिखाया। यही कारण है कि अब तुम दुःखी हो रही हो। अब न तो कोई उपाय तुम्हारे पास इस संयोग का जीवन बदलने का है और न हो [illegible] स्वभावतः पुष्प अपने [illegible] बदलने को छोड़ सकता है। तुम जरा देखो भी यह जगत् [illegible] नहीं रह सकती। तुम्हारे [illegible] रही है। तुम फिर सोचो [illegible] संयोग की दुनियाएँ छिन-छिन पर वियोग के [illegible] है। संयोग तुम्हारे सामने [illegible] तुम्हारे सामने पड़ रही है।

वियोग के नश्तर चुभो रहा है। वास्तव में तुम्हारे कुल दुःख का कारण यही संयोग है और उस संयोग का कारण पुष्प के असली रूप को न समझना है। देखिये, अब किस बेरहमी से यह वियोग के कांटे चुभा रहा है। यह है फूल में कांटा। और कांटों में फूल यह है कि उसके सौन्दर्याभाव के कारण तुम उसको अपना मन न दे सकीं और न ही वह इस बेरहमी से तुम्हारे मन को पटक रहा है, बल्कि तुमको यह सबक़ दे रहा है कि जिस तरह तुमने अपना मन उसको नहीं दिया उसी तरह अगर तुम अपना मन फूल को भी न देतीं तो तुम कांटे से बढ़ कर फूल के कांटे क्यों सहतीं। कांटों में फूल यह है कि वह अपने मानसिक संयोग को तुड़वा कर तुम को वियोग का दुःख नहीं देता। इसी तरह—

गर नमी ख्वाही शबद दिल खस्तगी।
जाने मन बागस्त यकुन दिल बस्तगी॥

अर्थात् अगर तू चाहता है कि तेरा दिल न टूटे तो अपने दिल को किसी से न बाँध और वह सिर्फ इतना ही समझ कर कि अगर फूल की पहली शक्ल फूल है तो दूसरी शक्ल कांटे से कम नहीं। फूल के वियोग के कांटे का ख्याल करते हुए फूल से दिल को न लगा और न ही कांटे में उसके भयकर स्वरूप को देख कर इतना घबड़ा कि उसके आने वाले पुष्प से भी बेपर्वाह हो जाय। बस, जब फूलों में कांटा और कांटों में फूल है तो दोनों बराबर हो गये। अब या तो कांटे से भी उतना ही संयोग कर कि जितना फूल से और या फूल से भी उतना ही मन हटा ले जितना कि कांटे से।

... लेकिन तू ख़ुद फूल की पत्ती पर नहीं आई। तुझे कोई लाया है। तू आने में विवश थी। इसलिये पड़ी रह और अगर जाने में भी विवश है तो उसी तरह चली जा कि जिस तरह आने में इन्कार न

था। तुझे जीवन-यात्रा से काम है जिसमें संसार का रथचितेरा तुझे घुमा रहा है। तुझे पुत्र के संयोग और वियोग से कोई ताल्लुक नहीं। घर वाले की मर्ज़ी है कहीं बिठा दे। मेहमान को अपने लिये ज़िद नहीं करना चाहिये। गृहस्वामी (मेज़बान या Host) अपने फ़र्ज़ को खूब समझता है। अतिथि को भी अपना आप नहीं भूल जाना चाहिये। अतिथि का काम आत्म-समर्पण है। गृहस्वामी का काम अतिथि का ख्याल करना है। अगर ज़मीन पर बैठने लगेगा तो गृहस्वामी की उदारता उसे वहाँ कैसे बैठने देगी? वह उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने साथ बैठायेगा। जब तक उसके घर में है वह अच्छी से अच्छी चीज़ों से मेहमान-निवाज़ी करेगा। लेकिन चलते समय गृहस्वामी के घर का त्याग त्याग नहीं कहला सकता क्योंकि उसमें ग्रहण का अंश नहीं है। वाह! यह सब कुछ बरतते हुए भी अपना कुछ नहीं। इसमें एक बात और बढ़ गई कि संयोग का सुख तो ले लिया लेकिन वियोग का दुःख न मिला। ऐ जग का चंद ! ऐ आम के सुन्दर कतरे!! ऐ मुर्झाई हुई शाम की तस्वीर!!! तू शान्त हो जा। यह वाटिका तेरी नहीं। तुझे बैठाया है उसकी इच्छा से संयोग कर, न कि फूल से।

न मुझ से पूछ कुछ ऐ रौनके दहर।
मैं आप आया नहीं लाया गया हूँ॥

(१) या तो संयोग में वियोग के कांटे को देख कर इसका सम्बन्ध (attachment) छोड़ दे और (२) ईश्वरीय सृष्टि में इस को अपने सफ़र का स्थान समझ कर इससे अपना दिल न लगा और (३) या इसके संयोग में अगर कोई सुख मिल रहा है तो इसके वियोग में दूसरे प्रकार के सुख का अनुभव करने की कोशिश कर कि जिस वियोग में न तो संयोग ही रहा है और न ही दुबारा वियोग होने वाला है। और दूसरी बात यह है कि जब अगर वियोग होगा

तो वियोग का ही वियोग होगा। इसीलिये इसी पुष्प की पत्ती पर बैठे हुए निश्चिन्त हो जा।

अन्दरूने गुलशने बर गुल न याए .खुश बजन।
चूँकि ईं राज़म बरायत रहबरे राहे वतन॥

अर्थात इस पुष्प वाटिका में फूल की पत्ती पर बैठी हुई भय से मुक्त हो जा क्योंकि वास्तव में न कोई संयोग है और न कोई वियोग। संयोग का स्वप्न वियोग की जागृति में समाप्त हो जायगा और वियोग की जागृति अपना समय खत्म करने पर फिर किसी और अवस्था में जे आयेगी तो यह जागृति भी स्वप्न बन जायगी। गुज़रा हुआ समय और स्वप्न की रात बराबर होती है। तू जीवन-यात्रा में उसी तरह चलती जा कि जिस तरह वह तुमको चलाता है। तू अब भय से मुक्त हो जा क्योंकि संयोग ही नहीं तो वियोग कैसा? यह सब सृष्टि के रचयिता की इच्छा है। तू .खुद यहाँ नहीं बैठी—उसने तुझे .खुद यहां बैठाया है। तू .खुद नहीं गिर रही, वह गिरायेगा (अगर उसने चाहा तो) तू उस इच्छा से प्रेम कर कि जिस इच्छा के स्वामी का प्रेम तुझे यह जीवन और पुष्प के निराले ढंग दिखा रहा है। तू गृह-स्वामी को अपना बना उसकी चीज़ों को केवल बरत। तू उसकी मर्ज़ी पर चल, सब घर के कर्मचारी और सामान तेरी मर्ज़ी पर चलेंगे। तू सृष्टि के रचयिता का वास्तविक संकल्प है। तेरा जीवन उसकी इच्छा है। बल्कि वह तेरे जीवन का जीवन है। तू नाश से रहित है क्योंकि अविनाशी तेरे अन्दर है। तू अनित्य नहीं क्योंकि नित्य तेरे अन्दर है। तुझे कोई चीज़ नाश नहीं कर सकती क्योंकि तू नाश से ऊपर है। शक्ल बदलने का नाम मौत नहीं बल्कि तबदीली है। कपड़े बदल कर कोई और नहीं हो जाता बल्कि तबदीली को देखता है। तू गिर कर मर नहीं सकती। तू सूर्य की तेज़ किरणों से सूख नहीं सकती। तू गिरकर या उड़कर धुवाँ बन

जायेगी। प्रभू की तरफ से आया दुःख या तबदीली अच्छे से और अच्छे की तरफ (from good to better) होती है। उसकी मार प्यार से कम नहीं होती। वह मिट्टी को गूंदता है घड़ा बनाने के लिए। वह पुरानी बुनियादें नई बुनियादें रखने के लिये उखाड़ता है। उसकी दी हुई कुनैन बुखार को तोड़ती है। उसके नश्तर से मवाद निकलता है। अब तू जल की बूंद है और वह परिच्छिन्न अवस्था में है। तू उड़ नहीं सकती, तू चल नहीं सकती, तेरा दूसरा जीवन गिर कर या उड़ कर, धुआँ, भाप या Vapour होगा। अब तू फूल की कोमलता को अनुभव कर रही है, फिर इससे भी कोमल हवा की कोमलता पर सवार होगी और आकाश की निलाहट को देखेगी। इस ऊँचाई से तमाम जहान की वाटिकाएं और पुष्प तेरे सामने होंगे। तुझे गिरने का भय न रहेगा। तुझे सूर्य की गरमी न डरा सकेगी। तू एक आज़ाद की तरह चार तरफ सैर करती फिरेगी। तू मैदानों को देखेगी, पहाड़ों की सैर करेगी, वहाँ नदी तेरा स्वागत करेगी। तू कभी ओला, बजरी और बरफ बन जायेगी और फिर कभी जल की बूँद बन कर चश्मों में मिली हुई, दरियाओं में बहती हुई समुद्र से आ मिलेगी। अब तेरा जीवन अनंत हो जायगा। तू उपाधियों (Limitations) को तोड़ देगी। तू भय से मुक्त हो जायेगी। समुद्र में मिलकर परिच्छिन्नता का त्याग केवल उपाधि, शकल की तबदीली है। वास्तव में तेरा जीवन नित्य जीवन है। तू जल की बूँद होती हुई कुल जल से एक है। तू सान्त होती हुई अनंत है। तू उपाधि भेद से इन तबदीलियों को देखती है जिनका दूसरा नाम मृत्यु है। वास्तव में न तो तेरे स्वरूप में ही मौत है और न तेरी तबदीलियों में; तबदीली केवल नाम रूप की है, जो नाम केवल पहिले ही असत्य है। असत्य का अभाव नहीं हो सकता और न ही सत्य का। सत्य का तो इसलिये नहीं कि वह सत्य है और असत्य का इसलिये कि वह है ही नहीं।

"तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत"

तेरे लिए शोक और मोह दोनों ही नहीं क्योंकि तेरे जीवन का आधार एक और पूर्ण है। अब या तो तू अपने नाम रूप का अपना जीवन समझ रहो है और या अपने असली तत्त्व को नाम रूप के जीवन में तो मृत्यु इसलिए नहीं कि वह जीवन ही नहीं और अगर जीवन है तो एक चीज दूसरी शक्ल में बदल जाती है और असली तत्त्व मृत्यु से इसलिए ऊपर है कि वह जीवन से भी ऊपर है।

इन बातों को सुन कर ओस की बूँद उसकी बूँद बन गई यानी ईश्वर की, सत्य की, असली तत्त्व की। बैठी तो अब भी वहीं पर है लेकिन भय से मुक्त है। संयोग में वियोग का भय नहीं क्योंकि संयोग मानसिक संयोग नहीं और जीवन का भेद यह समझ चुकी है जो मौत और जीवन दोनों से ऊपर है। Attachment (आसक्ति) में होते हुए भी लिप्त नहीं है। इसलिए भय, शोक, त्याग और ग्रहण के ऊपर होकर सृष्टि के रचयिता के, अनादि प्रेमाम के साथ सन्तुष्ट हुई जीवन-यात्रा को इसी तरह काट रही है कि जैसे चलती हुई हवा हर चीज से लगती हुई भी किसी वस्तु में बँधती नहीं और आगे निकलती ही जाती है।

सैर कर गुलशन में और गुल देख इस गुलज़ार के
पर बना अपने गले का इनको मत जीनहार हार

अर्थात् संसार-चक्र में ईश्वर तुझको जहाँ रखता है वहाँ पड़ा रह लेकिन ईश्वर का मन ईश्वर से अलहदा कर के किसी चीज का न दे। जो कार्यक्रम तेरे सुपुर्द कर रखा है करता चलाजा। जो नतीजा सामने आता है देखता जा और इस तरह अपनी इस जीवन-यात्रा को समाप्त कर और अगर अड़चनें आकर तुझे घबड़ाने लगें तो जीवन के इस उच्च लक्ष्य को देख कर ईश्वर से प्रार्थना करते जरा भी न घबड़ा कि इसमें इच्छा और भय पाया जायेगा। नहीं, अगर जीवन-यात्रा में तेरा मन तुझे प्रार्थना की

सोढ़ी में लिए बैठा है तो प्रार्थना क्यों न करे ? उसी से माँग, उसी से कह, उसी से ज़िद कर और उसी के समर्पित होकर अपना जीवन व्यतीत कर। कह दे—

यहाँ दस्ते सवाल दराज़ नहीं, किसी और पे यूँ मुझे नाज़ नहीं।
कोई तुझसा गरीब निवाज़ नहीं, तेरे दर के सिवा और दर न मिला॥

अर्थात् अगर तुझसे न माँगे तो और किससे माँगें ? तुझसे न कहें तो किसको कहें ? तेरे सरीखा दयालु और दाता भी तो दूसरा नहीं। हम अपनी हिम्मत से बढ़ कर डींग क्यों मारें ? आज तू मँगवाता है हम माँगते हैं। कल न मँगवायेगा हम चुप कर जायेंगे। लेकिन जहाँ हम कई कुछ माँगते हैं वहाँ यह भी माँगे बगैर नहीं रह सकते कि हम पर अपनी दया का हाथ हमेशा रख और अपनी इच्छा में एक होने की शक्ति देता रह जिससे कि हमारे लिये फूल और काँटों में कोई भेद न रहे। दुःख और सुख बराबर हो जायें। कुल संसार को तेरी इच्छा का यंत्र समझ कर तेरी लीला को देखते रहें और अपनी हस्ती भी एक यंत्र से बढ़ कर और कुछ न रहे और चारों तरफ़ तेरी दया ही दया का अनुभव हो।

इन तमाम बातों का भावार्थ यह है कि मनुष्य संसार की आरायश और खूबियों की हद पर जब पहुँच जाता है तो अपने आपको भाग्यशाली (खुशक़िस्मत, Fortunate) तसव्वुर करने लगता है। अक्सर लोगों के दिमाग़ में तो बड़प्पन का अभिमान पैदा हो जाता है और वह समझने लगते हैं कि जो लोग यहाँ तक नहीं पहुँचे वह जीवन-संग्राम (Struggle for Life) में अभी बहुत पीछे हैं और इस संग्राम को एक नित्य चीज़ समझने लगते हैं। इससे आगे भी वह उस व्यक्ति के समान है कि जो जीवन के भेद को न समझता हुआ केवल बाह्य ऐश्वर्य को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझ बैठा है और वह इतने में ही सन्तुष्ट है कि उसके पास इन्द्रियों के सात मद प्रकार के मौजूद हैं। लेकिन जिस समय इन

चीजों में हलचल मचाने वाली कोई बात सामने आ जाती है तो वह मनुष्य घबड़ा जाता है और उस समय जीवन के भेद को ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है। यह सच्ची जिज्ञासा अपने आकर्षणों द्वारा सद्गुरु को समीप करती है और फिर वह इस तरह खाओ, पिओ और खुश रहो (Eat Drink and be Merry) के असूल को छुड़ाता हुआ उस जीवन के असली रहस्य को समझाता है कि जिससे मनुष्य इसी संसार चक्र में रहता हुआ और अपने कार्य करता हुआ भी आत्मा की नित्यता और जीवन की अशांत धाराओं में शान्ति के मर्म को समझ कर एक जीवन-मुक्त पुरुष के समान अपना जीवन व्यतीत करता है।

न चाहना

इस लेख में मैं आपके सामने वह दौलत [illegible], दैवी सम्पदा, आध्यात्मिक धन रखना चाहता हूँ जिसको पाकर मनुष्य अपने को धन्य समझने लगता है और आनन्द के समुद्र में कभी इस तरफ और कभी उस तरफ तैरता फिरे।

तेरे सीने में तो [illegible] बहुत [illegible] रहे।
और तू कतरे के पीछे [illegible] नाला रहे॥
[illegible] है आलम को [illegible] तुझसे यह तृष्णा रहे।
और तू साहिल पे बैठा उस तरफ [illegible] रहे॥
[illegible] का पर्दा पकड़ कर [illegible] [illegible] [illegible]।
और अपने आंसुओं का ले [illegible] [illegible]॥

अर्थात् तेरे हृदय में आनन्द का समुद्र मौजूद है और तू आनन्द के कतरों की तलाश में मारा-मारा फिर रहा है। [illegible] तू [illegible] [illegible] है तो इस ढंग से पड़ा [illegible] है और अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] है अथवा अपने [illegible] को [illegible] [illegible] रहा है

यह मज़मून साधारण मज़मून नहीं है। यह रुहानी तक़सीम है, दैवी पारमार्थिक बाँट है।

रिन्दों की तलब पर जब साकीए कौसर को भी जोश आया।
पैमाना बकफ़ आया मैख़ाना बदोश आया॥

अर्थात् जब भक्त और प्रेमियों के बारबार माँगने पर उस आनन्द के भण्डार को या मस्ती के समुद्र को (भगवान या गुरु को) जोश आ गया तो उसने मस्ती का प्याला हाथ में ले लिया और मस्ती का घर अपने कन्धों पर उठा लिया।

जिस तरह गरमी के मौसम में घड़े कन्धों पर और कूज़, लुटियायें, कटोरे हाथों में लेकर हर राह चलते को पानी पिलाया जाता है उसी तरह उस दयालु ने भी हरेक से पूछना शुरू किया 'आप पीजियेगा?" नहीं, आप ज़रूर पीजिये बग़ैर क़ीमत के प्याले बाटना शुरू किया और हर पीने वाला पीकर उस दुनिया में चला गया जहाँ दुनियाँ का चिन्ह मात्र भी नहीं, या प्रेम की दुनिया है, या आनन्द का समुद्र लहरा रहा है। जिस नशे को अनुभव करके मनुष्य उन झगड़ों को भूल चुका है। आखिर उसने दिखा ही दिया कि यह मेरी देरी और दूरी केवल आपकी प्यास बुझाने को थी और कुछ नहीं। इस अमृत के प्याले बँटने पर उन लोगों को ज़रूर अफ़सोस हुआ कि जिनको प्यास न लगी थी या प्यास कम थी। और ज्यों प्यास की बेताबी से घबरा रहे थे उन्होंने उतना ही इस अमृत का ज़्यादा पिया और अपनी प्यास को मुबारक ख़्याल किया। उस समय उनको अपने साक़ी (गुरू) के देर लगाने का मतलब समझ आया। बहर हाल, पूर्ण ज्ञान (अक़्ले कुल) की तरफ़ से जो कुछ आता है वह मुनासिब ही होता है। चाहे अक़्ल उसे समझ सके या न समझ सके।

यह लेख यद्यपि इन्तहाई मंज़िल से तालुक़ रखता है लेकिन बीच की मंज़िल वालों के लिये भी इसलिये अच्छा है कि आख़िरी

मंज़िल का शौक़ उनके दिलों में पैदा करता है।

मातलब गर तवंगरी ख़ाही।

(अर्थात् अगर तू दौलतमंद बनना चाहता है तो मत मांग)

यह वह चीज़ है जिसको रूहानी बादशाह अपनी मौज में आकर अक्सर बाँटा करते थे। मेरे श्री गुरुदेव भगवान बाबाजी महाराज इस ऊपर वाले मिसरे को अक्सर फ़रमाया करते थे।

तलब के माने इच्छा है। मतलब के माने चाहना है और मा—तलब के माने न चाहना है। मतलब और म तलब एक ही तरह लिखे जाते हैं लेकिन दोनों का मतलब जुदा-जुदा है। मतलब को म-तलब की शक्ल में जब पढ़ा जाय तो उसका मतलब यह हो जाता है कि मत तलब कर अर्थात् मतलब ख़ुद पूरा करता है कि मा—तलब। यानी अगर तू मतलब को पूरा करना चाहता है तो मत तलब कर। अर्थात् चाहने को पूरा करने का तरीका न चाहना ही है।

अपने सम्बन्धियों से कुछ न चाह। मनुष्य से कुछ न चाह। देवताओं से कुछ न चाह। यहाँ तक कि ईश्वर से भी कुछ न चाह। बल्कि अपने से भी कुछ न चाह।

चाह चुहड़ी चमियारी अति नीचन की नीच।
तू तो पूरण ब्रह्म है जो चाह न होती बीच॥
चाह गई चिन्ता गई मनुआ बे परवाह।
जिनको कछू न चाहिये सो शाहनपतशाह॥

मेरे श्री गुरुदेव के पास एक दिन एक [illegible] आये और कहने लगे कि मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। आपने कहा।— [illegible] शिष्य बनना चाहते हो या सन्यासी। उन्होंने कहा महाराज मुझे दोनों का भेद मालूम नहीं। इसी लिये [illegible] आपने आज्ञा दी कि सन्यासी वह है जो [illegible] के लिए हर तरह का त्याग करने को तैयार हो। [illegible]

छोड़ सकता हो और हर अपने अभिमान को चकना चूर करने वाली बात कर सकता हो।

कसे कि जानो जहाँ दाद इश्के ऊब खरीद।
वकूफ याफ्त जसूदो जयाने मकतबे मा॥

(अर्थात् जिसने प्राण और अपना सर्वस्व उसे दे दिया उसने उसके प्रेम को खरीद लिया और वह हमारी पाठशाला के नफे, नुक़सान से वाक़िफ़ हो सकता है)

लैला अक्सर अच्छी-अच्छी चीज़े बनाकर अपनी दासी के हाथ मजनूं के लिए भेजा करती थी। मजनूं उस समय भिक्षुओं में रहा करते थे। दासी को मजनूं की पहिचान नहीं थी। उसको भिक्षुक लोगों में जाकर पूछना पड़ता था कि मजनूं कौनसा है। लैला ने उसके लिए खाना भेजा और जब वह पूछा करती थी तो हर शख्स मजनूं बनकर सामने आ खड़े होते थे कि मैं मजनूं हूँ, यह मुझे दो, यह मुझे दो। बेचारी को जानना मुश्किल हो जाता था कि मजनूं कौन है। उन स्वादिष्ट पदार्थों को खाकर दूसरे दिन हजारों मजनूं कतार लगाये खड़े रहते थे कि कब लैला की दासी खाना लेकर आये और वह मजनूं बनकर उसे ले सकें। महिनों भर यही सिलसिला रहा। एक दिन लैला ने पूछा कि दासी ! तुम मजनूं को इतने अच्छे, अच्छे खाने खिलाकर आती हो। अब तो वह बहुत मजबूत हो गये होंगे। तो दासी ने मुसकरा कर कहा—मजबूत हो गये होंगे ? इसका यह मतलब है कि वह पहिले मजबूत नहीं थे। वह तो पहिले ही काफी हृष्ट-पुष्ट शक्ल वाले हैं। (लैला घबड़ा कर)—क्या कहा पहिले ही काफी मजबूत थे ? दासी—जी हाँ। लैला :—लेकिन कैसे हो सकता है ? मजनूं बेचारे की हालत तो यह है :—

एक क़तरा भी न टपकाना कहीं ऐ चश्मेतर।
नातिर मैला हूँ बहा ले जायगी तस्वीरे सोज॥

अरी मूर्खा ! तू क्या कह रही है ? मजनूं तो सूखकर काँटा हो चुका है, और तू कह रही है कि वह काफी मोटा मजबूत और तन्दुरुस्त है। तू आखिर खिला किसको आती है ?

दासी—(चौंककर)—मैं जब जाकर पूछती हूँ कि मजनूं कौन है तो वहाँ हर शख्स यह कहकर आ जाता है कि मैं ही मजनूं हूँ। और दूसरे दिन नया मजनूं पहिले दिन के मजनूं को झूठा बतलाता हुआ अपने सच्चा होने का सबूत देकर खाना मुझ से ले लेता है और मैं खिला आती हूँ। मुझे तो आपकी बतलाई हुई शक्ल वाला वहाँ कोई भी नजर नहीं आया कि वह तिनके की तरह सूखा हुआ हो, चेहरा जर्द हो, नेत्रों से अश्रुपात हो रहा हो, अपने को भूला हुआ हो। अफसोस ! मैं मजनूं को नहीं पहचान सकी और दूसरों को ही खिला आती रही।

लैला ने कहा—अच्छा, जो हुआ सो हुआ। मैं आज तुमको असली मजनूं तक पहुँचा सकूँगी। तू आयन्दा उसी को खाना दिया करना। लैला ने एक थाल में प्याला रखा और एक छुरी, और उनको ऊपर से रेशमी रूमालों से ढाक दिया और कहा कि जाओ, उन मांगने वालों की कतार में जाकर पूछना कि मजनूं कहां है और जो मजनूं होने का दावा करे उससे कहना कि लैला ने यह छुरी और प्याला भेजा है। उसे आज मजनूं के दिल का खून चाहिए। बस फिर जो इस काम के लिये तैयार हो वही मजनूं होगा।

दासी थाल उठाए चल दी और उन लोगों के पास पहुँची जो नित्य माँगने का बहाना मजनूं की शक्ल में किया करते थे। रेशमी रूमाल से ढके हुए थाल को देख कर मुंह पर एक [illegible] फिरने लगा। यह ख्याल करते हुये कि आज तो एक प्रकार [illegible] मालूम होती है न जाने कितने अच्छे खाने होंगे ? सामने की [illegible] कतार में धक्कम-धक्का शुरू हो गया और एक से एक आगे बढ़ने

की कोशिश करने लगा। जो इस कशमकश में कामयाब होकर आगे आया, दासी ने उससे पूछा ? "आपका क्या नाम है ?"

भिक्षुक—मजनूं और क्या ?

दासी—तुम ही सच्चे मजनूं हो न ? और तो कोई नहीं ? यहाँ तो शोर मचा हुआ है कि मैं मजनूं हूँ, मैं मजनूं हूँ।

भिक्षुक—मेरे सच्चे होने का सबूत यह है कि सब से आगे मैं ही खड़ा हूँ।

दासी—(मन ही मन में) कहाँ तो लैला की बतलाई हुई मजनूं की शक्ल, और कहाँ यह इच्छा की मूर्ति, भूख की शक्ल, अच्छा खासा पहलवान, सब को पीछे खदेड़ कर अपना मजनूं होने का सबूत पेश करने आया।

(प्रगट) अच्छा, तो तुम ही मजनूं हो !

वह—जी हां और दूसरा कौन है ?

दासी—तो यह लैला ने तुम्हारे लिये ही भेजा है।

वह—आखिर क्यों न भेजती, हम भी तो लैला लैला सदा रटा करते हैं।

दासी—इसलिये लैला को आपका इतना खयाल है।

वह—क्या आज दावत थी ?

दासी—तुम्हें कैसे मालूम ?

वह—रोज से बड़े थाल और रेशमी रुमालों को देखते हुए।

दासी—जी हां, दावत थी। लेकिन उस दावत में एक कमी रह गई है उसके लिये किसी चीज की जरूरत है, लैला ने आपसे मँगवाई है।

वह—अच्छा पहले खाना खा लें फिर उसे सुनेंगे।

दासी—मगर मुझे बहुत जल्दी है।

वह—क्या मेरे खाना खाने का भी इन्तजार नहीं कर सकती हो ?

दासी—आप क्या कह रहे हैं ? इन्तजार ? मैं तो एक मिनट भी नहीं रुक सकती। जल्दी कीजिए। वहाँ सख्त जरूरत है।

वह—अच्छा तो कहिये क्या काम है ?

दासी—कुछ नहीं मामूली सी बात है।

वह—तो मैं हाजिर हूँ।

दासी—(थाल से रूमाल को उठाती हुई)—देखते हो यह क्या है ?

वह—(घबड़ा कर)—हैं ? यह क्या ? यह तो छुरी है और प्याला आखिर किस लिए ? क्या आज खाना वाना कुछ नहीं भेजा ?

दासी—नहीं, वहाँ तो लैला को कुछ ऐसी तकलीफ है कि जिसके लिए खून के फ़स्द की जरूरत है। और वह भी दिल से। लैला ने कहा है इस काम को मजनूं ही कर सकता है, और कोई नहीं। इसलिये उसने कहिये कि आज खाने का इन्तजार न करें बल्कि मेरी तकलीफ को दूर करने के लिए अपने दिल का ख़ून भेजें। इसलिये यह छुरी और प्याला साथ ही भेज दिया है।

वह—(घबड़ा कर पीछे हटते हुए) हैं ?, क्या कहा ? खून ? और दिल का खून ?

दासी—जी हाँ, खून और दिल का खून।

वह—(पीछे मुँह फेरते हुए) तो मजनूं वो पीछे है, मैं नहीं।

दासी—अभी तो तुम कह रहे थे कि मैं ही मजनूं हूँ।

वह—लेकिन एक नाम के कई हो सकते हैं।

दासी—तो आप खाने वाले मजनूं हैं, .खून देने वाले मजनूं नहीं।

इसी प्रकार हर शख्स छुरी और प्याले की शक्ल को देखता हुआ मजनूं न होने का दावा करने लगा और मैदान खाली हो गया।

दासी (हैरान होकर)—हे ईश्वर! यह क्या? मैं इन्हीं को मजनूं समझ कर खिलाती रही। न मालूम छुरी के इम्तहान में क़ामयाब होने वाला कोई मजनूं मिलेगा भी या नहीं? लैला को तो विश्वास है कि मेरा मजनूं इस परीक्षा में उत्तीर्ण होगा।

इस भाग दौड़ को देख कर, दूर एक कोने से आवाज़ आई कि यह हलचल कैसी है? किसी ने कहा लैला ने छुरी और प्याला भेजा है, मजनूं के दिल का खून लेने के लिए। लेकिन रोज मजनूं बनने का दावा करने वाले लैला के भेजे हुए तरह-तरह के खाने वाले, आज छुरी और प्याले को देख कर मजनूं के खिताब को छोड़ बैठे और ग़ायब हो गये। इस जवाब को सुन कर आवाज़ देने वाला लकड़ी के सहारे लड़खड़ाता हुआ छुरी और प्याले की तरफ कदम बढ़ाने लगा। बेचारे का जिस्म एक हड्डियों की मुट्ठी था, । गोश्त झिल्ली की शक्ल में बदल चुका था। आँखें अन्दर को धँसी हुई थीं। दुनिया की सुध-बुध नहीं थी। .खून का नामोनिशान ही न था। चलने की हिम्मत तक भी न थी। लेकिन लैला के संदेश को सुन कर छुरी तक बढ़ने की हिम्मत आ ही गई। आवाज देने वाला आकर कहने लगा—तुम कौन हो?

दासी—मैं, लैला की दासी हूँ।

वह आवाज़ देने वाला—आखिर किसलिए आई हो?

दासी—तुम पूछ कर क्या करोगे? अपना रास्ता लो।

वह—आखिर मैं भी सुन लूँ। क्या हर्ज है?

दासी—पहले सुनने वाले सब भाग गये। अब और एक नया सुनने वाला आया है। अच्छा सुन, यह देखो छुरी और प्याला।

वह—जी हाँ!

दासी—तो बस, लैला ने मजनूं के दिल का ख़ून मांगा है। खाने के वक़्त तो सब मजनूं बने हुए थे। अब ख़ून देने के वक़्त कोई भी मजनूं बनने को तैयार नहीं। सब ख़जनूं (अर्थात् खाने वाले) ही साबित हुये।

वह—(छुरी पकड़ कर)—कहाँ का ख़ून मांगा है?

दासी—(हैरान हो कर)—आख़िर तुम हो कौन? मैंने आज तक तुम्हें खाने वालों में तो देखा नहीं। लेकिन ख़ून देने वालों में तैयार हो। (कुछ गौर से देख कर थर्राती हुई मन में) शक्ल तो उसी तरह की है कि जो लैला ने बयान की थी। मुझे नाम ज़रूर पूछना चाहिये।

दासी—आख़िर तुम्हारा नाम क्या है?

वह—तुम्हें नाम से क्या? तुम्हें तो काम से मतलब है।

दासी—ठीक है, लेकिन ख़ून मजनूं के दिल का चाहिये, किसी और के दिल का नहीं।

वह—लेकिन मजनूं का इतना ख़ैरख़्वाह कौन है जो उसकी जगह अपना ख़ून देने के लिए तैयार हो?

दासी—अगर तुम लैला के लिए अपना ख़ून दे सकते हो तो मजनूं के लिये कोई अपना ख़ून क्यों नहीं दे सकता?

वह—लैला तो एक प्रेम का निशाना है, इसलिये उसके लिए तो ख़ून दे सकता हूं। लेकिन मजनूं किसी के प्रेम का निशाना नहीं, उसके लिए ख़ून कौन दे?

दासी—तो क्या तुम ही वह··· · मजनूं हो ?

वह—तुमने कैसे समझा ?

दासी—सिर्फ़ इसलिये कि लैला के लिये कोई और ख़ून नहीं दे सकता।

वह—लेकिन अभी मैंने ही कौन सा दे दिया है ?

दासी—तैयार तो नजर आते हो।

वह—(बात काटते हुए) क्या लैला को अभी तक यह ख्याल है कि मजनूं के अन्दर कोई ख़ून का क़तरा बाकी है ? क्या वह नहीं जानती कि मजनूं उसके प्रेम में सब कुछ जला चुका है। ख़ैर, देखना मेरा काम है। निकलना न निकलना मेरे वश की बात नहीं।

दासी—मालूम होता है तुम ही मजनूं हो ?

मजनूं छुरी को अपने सीने की तरफ करता है, दिल से ख़ून का कतरा बाहर निकलता है, प्याले में डाल कर दे देता है, यह कहते हुए कि अफसोस ! इससे ज्यादा ख़ून न निकल सका। साथ ही यह भी कहा कि लैला तो इतनी मोटी है उसने मेरे नातवां (दुरा, कमजोर) शरीर से ख़ून की उम्मीद की लेकिन अपने शरीर से वह चीज लेने का ख्याल न किया।

तमाम खाने वाले मजनूं इस छुरी चलाने वाले मजनूं को छुप-छुप कर देख रहे थे और दिल ही दिल में कह रहे थे कि दर असल लैला के भेजे हुए खाना खाने का हक़ भी उसी को है कि जो उसकी छोटी सी बात पर अपना ख़ून बहा सकता है।

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा तो इक क़तराए ख़ून निकला॥

दासी घबराई हुई लैला के पास पहुँची—"बीबी ! बीबी !! आखिर आपका मजनूँ देख ही लिया । आज तक के खाने वाले मजनूँ सब खजनूँ साबित हुए और छुरी की शक्ल देख कर पूँ दौड़े और गायब हुए कि जैसे खरगोश के सिर से सींग । यह कहते हुए आखिर एक नाम के कई हो सकते हैं । नाम तो हमारा भी मजनूँ ही था लेकिन खाने वाले खून बहाने वाले नहीं ।

लैला ने पूछा—मजनूँ ने खून निकालते वक्त कुछ और भी कहा था ।

दासी—हाँ, मजाक में इतना कहा था, मेरे इस दुबले पतले शरीर ने ख़ून की आशा की, लेकिन अपने मोटे शरीर से उस इच्छा को पूरा न कर सकी ।

लैला यह सुन कर मुस्कराई और छुरी को अपने जिस्म के हिस्सों पर चलाना शुरू किया । लेकिन आश्चर्य यह कि उसके इतने मोटे शरीर में से राख ही झड़ी और ख़ून की एक बूंद भी न टपक सकी ।

लैला ने कहा—दासी ! अगर मजनूँ के अन्दर मेरे प्रेम में सिर्फ एक ख़ून का कतरा बाकी रह गया है तो मेरे दिल में उसके प्रेम के लिए इतनी बूँद भी बाकी नहीं थी ।

मेरे श्री गुरुदेव ने उन महाराजा को आज्ञा दी कि जो भगवान के लिये मजनूँ की तरह अपना आप पेश कर सकता है और हर क़ुर्बानी कर दिखा सकता है वह ही सच्चा शिष्य और सच्चा मजनूँ की तरह सच्चे शिष्य हैं । बाकी बेकार हैं ।

इसके बाद देते हुए श्री गुरुदेव ने एक शिष्य उस पर हाथ रख दिया और कहा कि महाराजा साहब ! जितने शिष्य मेरे नजर में इस किस्म के हैं, उनकी शिनाख्त, और उनके दर्शनों को ... है ।

इसकी वजह यह है इस तिनके की जरूरत तो मुझे मिसाल देने के लिए पड़ी है लेकिन दुनिया की चीजों की मेरे दिल को इतनी भी जरूरत नहीं। जरूरत से चीज की क़ीमत पड़ती है और जरूरत न रहने से उसकी क़ीमत खतम हो जाती है।

मिसाल के तौर पर, दुनिया में अरबों रुपयों की दवाइयाँ हैं। इनकी क़ीमत डालने वाली चीज कौन सी है?—सिर्फ बीमारी। अगर एक सेकिण्ड के लिये फर्ज कर लिया जाय कि दुनिया से बीमारी हमेशा के लिए ख़त्म हो गई है तो दवाओं की क़ीमत क्या रह जायगी? कोई उन्हें मुफ्त भी लेने को तैयार न होगा। इसी तरह संसार और उसके पदार्थों की क़ीमत डालने वाली चीज सिर्फ इच्छा, ख्वाहिश या तमन्ना है। अगर ईश्वरीय कृपा से वह ख्वाहिश किसी के दिल में न रहे तो उसके लिए दुनिया और उसकी चीजों की क़ीमत क्या रह जावेगी? भगवान की कृपा से अब इस दिल में न तो महाराजा बनने की इच्छा है न दुनिया की और चीजों का इकट्ठा करने की ख्वाहिश, यहाँ तक कि स्वर्ग और मोक्ष को पाने की इच्छा भी बाकी नहीं है। फिर तुम्हारे राज्य और उसकी चीजों की क़ीमत मेरे लिये क्या होगी—बल्कि दुनिया की ही क़ीमत क्या होगी?

दूसरे मानों में, मेरे श्री गुरुदेव भगवान ने यह शिक्षा दी कि पदार्थों के हासिल करने से इन्सान सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि उसके त्याग से। त्याग के माने पदार्थों को जाहिरी छोड़ना नहीं बल्कि भगवान को दिल में जगह देते हुए इन चीजों की इच्छा दो वजह से नहीं करनी चाहिये। एक तो इसलिये कि वह भगवान के मुक़ाबिले में कुछ नहीं और दूसरे इसलिए कि जिस भगवान के हम हो चुके हैं वह समय समय पर जिन चीजों की जरूरत हमारे लिए समझता रहेगा वह देता रहेगा। चूँकि वह हमारी जरूरतों को हम से अधिक अच्छा समझता है इसलिए किसी समय हमारी

इच्छाओं का पूर्ण न होना उसकी इच्छा और प्रेम का सबूत होता है। बच्चा एक वक़्त पिता से वह चीज़ माँगता है कि जो उसके लिए मुफ़ीद नहीं होती इसलिए पिता उस समय अपने प्रिय पुत्र की इच्छा का विरोध करता है और उसके रोने खीजने की भी पर्वाह नहीं करता। पुत्र समझता है पिता दुश्मनी कर रहा है, ज्यादती कर रहा है, कंजूसी से काम ले रहा है। लेकिन पिता अपने पुत्र की इन सब बातों की पर्वाह न करता हुआ बच्चे को वही देता है कि जो उसके लिये मुनासिब समझता है।

इसलिए जिसको यह विश्वास है कि मेरी रक्षा करने वाला मेरी हर बात की फ़िक्र कर रहा है और मुझे समय-समय पर वह सब चीज़ें पहुँचाता रहेगा कि जो मेरे लिए मुनासिब ख्याल करता है। इस बात को समझ कर वह अपनी इच्छा को छोड़ देता है। अगर हममें वह आ बैठा है तो अपनी फ़िक्र कौन नहीं करता।

दूसरे, अगर हम उसके अंश हैं तो भी उसको फ़िक्र ज़रूरी है।

तीसरे, अगर हम उसके बनाये हुए हैं तो भी वह हमारी फ़िक्र इस तरह करेगा कि जिस तरह कुम्हार अपने घड़े की करता है।

अगर केवल प्रकृति के नियम ही कार्य कर रहे हैं तो भी प्रकृति (नेचर) ने जिस तरह हर चीज़ को मुनासिब शक्ल, तरतीब और उसकी रक्षा के सामान दे रखे हैं उसी तरह आदमी भी पलते रहेंगे।

हज़रत ईसा ने फ़रमाया है, "कल की फ़िक्र मत कर। जिसने बागों के पौधों और फूलों को इतने ख़ुशनुमा लिबास दिए हैं वह तेरी भी रक्षा अवश्य करेगा।"

तू कल की फ़िक्र न कर। जो रब तेरे सामने सूरज, चांद, तारागण, हवा, पानी, और तरह-तरह की वनस्पतियां और इतनी बड़ी दुनिया को लायेगा वह तेरी आवश्यकताओं की भी चिन्ता अवश्य करेगा।

जिसने दुनिया को दुनिया की ज़रूरत के मुताबिक़ सामान दिए, पानी को प्यास बुझाने की शक्ति, हवा को ज़िन्दा रखने की ताक़त, सूरज को गर्मी, चांद को ठंडक, पानी को रवानी, हवा को चलना और तारों को जगमगाना दिया है वह तेरी छोटी सी ज़रूरत की भी फ़िक्र ज़रूर करेगा।

सूरज की ज़रूरत महसूस करते हुए किसी के कहने पर सूरज को गरमी नहीं दी गई, चांद को ठंडक नहीं दी गई। बल्कि यह सब कुछ बिना माँगे मिला है तो आयन्दा भी सब कुछ मिलता रहेगा।

जो दाता तेरी हज़ार ज़रूरतों को बिन माँगे पूरा करता है वह एक ज़रूरत के लिए तुझे किसी और के दरवाज़े पर न जाने देगा।

जिस दाता को देने की आदत पड़ गयी है वह अपना हाथ रोक नहीं सकता। अगर तेरे पास लेने के लिये झोली नहीं है तो वह तुझे झोली देकर देगा। वह आँख दे कर सूरज को दिखायेगा। वह कान देकर, राग सुनायेगा वह दिल देकर अपना प्रकाश तुझे देगा। सच बात तो यह है कि जो भोजन देने वाला है वही भूख देने वाला है। वह भूख देकर भोजन की क़दर करवाता है। वह आँख देकर सौन्दर्य को दिखाता है। वह अपना प्रेम देकर अपने दर्शन कराता है। फिर जिसने तुझे भूख दी है वह खाना क्या न देगा?, प्यास लगाई है, पानी क्यों न देगा? और इच्छायें पैदा की हैं, सामान क्यों न देगा? ऐसा उदार दाता अगर तेरे किसी सवाल को सुन कर चुप है तो उसकी वह खामोशी देने से कुछ कम नहीं है। वह उस खामोशी में या तो तुझ को बड़ी चीज़ देना चाहता है या तुझ को कुछ नुक़सान से बचाना चाहता है।

तू उसके सुपुर्द अपना आप इस तरह कर दे कि जिस तरह बच्चा माँ के सुपुर्द होता है, मरीज़ डॉक्टर के और जानवर अपने चरवाहे के।

अगर तेरी कोई इच्छा पूर्ण होती नजर नहीं आती तो तू उसकी इच्छा को अपनी इच्छा बना ले। फिर तुझे यह कहने का मौका न मिलेगा कि तेरी इच्छा पूरी न हुई।

तू सिर्फ़ उसको याद रख कि जो देने वाला है। तेरी जरूरतों को वह ख़ुद फ़िक्र करेगा। तू अगर अपनी जरूरतों को नहीं छोड़ सकता तो उनको भी साथ लेकर उनकी गोद में जा बैठ। वह जहां तेरी हिफ़ाज़त करेगा वहाँ तेरी इच्छाएं मुबारक होंगी जो कि उसके हाथों पूरी होंगी। तू अपनी इच्छाओं को अपने बल से पूरा होता देख कर अभिमान न कर। सम्भव है उनके परदे में कोई बुराई मौजूद हो।

उधर से आने वाली नाकामयावियों को भी कामयाबी से बढ़ा समझ। अगर इच्छा किये बग़ैर नहीं रह सकता तो उसी की इच्छा कर। इसमें या तो बाकी इच्छाएं मिट जायेंगी या ख़ुद ब ख़ुद पूरी हो जायेंगी।

तू हर वक्त शान्त रह चूँकि तेरा इन्तज़ाम हो रहा है। भगवान ने तुझे प्रकृति की गोद में सौंपा है। उसे तेरी हिफ़ाज़त इसलिये भी करनी है कि तू भगवान् को सौंपी हुई चीज है और प्रकृति को इसका जवाब देना है।

तू सब तरह के सामान रखता हुआ भी अपने अज्ञान से अपने को दुःखी न कर। तू इतने बड़े का बच्चा है। तुझे फ़िक्र क्यों? तू इतने बड़े का सेवक है, तुझे फ़िक्र कैसे? इसलिये शान्त हो जा।

किसी के घर में आकर उसके मेहमान बन कर क्या [illegible] करनी पड़ती है कि उसने कहां से? यह घर वाले का इन्तज़ाम नहीं [illegible] गया है? यह इच्छा तुझे बेचैन करती है। तू उसको [illegible] छोटा समझने लग जाता है। तू इतने बड़े [illegible] की गुलामी न कर। तू उसका हाथ [illegible] देख। यह बात तेरे लिए [illegible] साबित होगी।

एक बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ा और तमाशा देखने गया। वहां काफी से ज्यादा भीड़ थी, बाजार लगा हुआ था, हर तरह के दिलचस्प खिलौने थे और सामान। आखिर बच्चे के दिल में खिलौनों की मुहब्बत समा ही गई। बाप का हाथ छोड़ दिया। भीड़ में धक्के खाता हुआ खिलौने की दुकान पर जा पहुँचा। दो चार खिलौने उठा कर जेब में डाल लिये और वापिस मुड़ना चाहा लेकिन दुकानदार ने हाथ पकड़ा—कहां जाते हो? पैसे तो दिये ही नहीं? बच्चा घबड़ा कर पिता की तरफ देखने लगा, पिता था ही नहीं। इधर दूकानदार ने पकड़ रखा है उधर पिता गुम है। यह हाकिम का बेटा था लेकिन दुकानदार को क्या पता? थोड़ा सा पिटे भी, और चिल्लाये भी और पिता को आवाज देना शुरू की। बाप आगे ही तलाश में था—बच्चे की आवाज सुन कर दौड़ा आया। बच्चा अब पिता से लिपट गया और कहा यह मुझे खिलौने नहीं देता और पीट भी रहा था। बाप की आँखों में गुस्सा उतर आया। उसने खिलौने के पैसे तो दे ही दिये और दुकानदार को डाँटा कि तुम नहीं जानते यह किसका बच्चा है? दुकानदार ने माफी माँगी और अज्ञानता प्रगट की। पिता ने फिर अपना हाथ पकड़ने को बच्चे को कहा लेकिन उसने इन्कार किया और कहा—पिता! तुम मेरा हाथ पकड़ो। इसमें दो फायदे होंगे—एक तो मेरी मर्जी के मुताबिक हाथ न छोड़ोगे और मुझे पिटने न दोगे। और जब साथ रहेंगे तो इच्छाऐं ख़ुद ब ख़ुद पूरी होती रहेंगी।

इच्छा आराम के लिए की जाती है और इच्छा पैदा होने पर वही आराम बरबाद हो जाता है।

चीजों के मिलने से इच्छा घटती नहीं बल्कि बढ़ती ही जाती है और यहां तक बढ़ती है कि "तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" वाली मिसाल सामने रहती है। मनुष्य थक जाता है लेकिन दौड़ने का मैदान सामने ही रहता है। जब तू कुछ चाहता है और नहीं

पाता है तो अपने को कमजोर ख्याल करता है। इस तरह इच्छा तुझको कमजोर बनाती है।

इच्छा के पैदा होने का कारण यह है कि तू असलियत से नावाकिफ है। और इस बात से भी कि पहिले सब कुछ तेरे लिए तैयार है या तेरा मुहाफ़िज़ तेरे लिए हर वक्त फ़िक्र कर रहा है और या यह इच्छा तेरे अन्दर इसलिए पैदा हो रही है कि तू दुनिया को सत्य मानता है। इसके मिथ्यापन, इसके स्वप्न ऐसी शक्ल को अनुभव नहीं करता है। यह एक स्वप्न है, तू इच्छा न कर। यह मृग तृष्णा का जल है, तू इच्छा न कर। यह नाश होने वाली है, तू इच्छा न कर।

यह इच्छा तुझे हर तरह दुःख देती है—चाहने में, पाने में, और खोने में। जब तक चीज नहीं मिलती तू दुःखी रहता है। जब मिलकर चली जाती है तू दुःखी होता है और जब मिलने में हिफाजत करना पड़ती है तब भी तू दुःखी होता है। चूंकि इच्छा में दुःख है इसलिये तू इच्छा न कर।

जो चीज कि भगवान् तेरे नसीब कर रखी है या तुझे देना है या तेरे लिये मुकर्रर है तू उसे अपनी इच्छा से दूर न कर। तेरे चाहने के माने यह हैं कि वह चीज तुझ से दूर है और तेरे लिए मुकर्रर नहीं। तेरी इच्छा की आदत को छुड़ाने के लिए वह चीज तुझ से भागने लगती है कि जिसको तू चाहता है। और जब तू अपने मतलब को मतलब कह कर छोड़ देता है और भगवान की तरफ देखने लगता है तो वह चीज तेरे पास आ जाती है। जैसे तेरे जीवन की ज़रूरतों का इन्तजाम भगवान् ने तेरे जन्म लेने से पूर्व ही कर दिया है इसी तरह तेरी तमाम असली और ज़रूरी चीज़ों का सामान उसने पहले ही कर रखा है।

जो चीज़ अपनी नहीं उसको न चाह क्योंकि वह अपनी नहीं—नाश होने की वजह से, दुःख देने की वजह से—ज़ाहिर होने की

दृष्टि से। और इसलिए कि उसकी इच्छा भगवान् को पाने की इच्छा में बाधक होती है और या इसलिए इच्छा न कर कि अगर उसका तुझ तक आना ठीक है तो वह ख़ुद ही आ जायगी और इसलिए भी न चाह कि जो तुझको देना है वह पहिले ही दिया जा चुका है और जो नहीं देना वह किसी तरह भी नहीं मिलेगा।

सिर्फ उसको याद किये जा। वह जो मुनासिब समझेगा देता जायगा। वह अगर नुक़सान पहुँचाता है, तेरी इच्छा के खिलाफ़ चलता है तो वह भी रुहानी फ़ायदा पहुँचाने के लिये।

उसका काम देना है तू माँग कर उसकी सख़ावत को कम न कर। उससे मत माँग—क्योंकि वह माँगने से पहिले जानता है।

उससे मत माँग ताकि तू ग़लत न माँग बैठे।

उससे मत माँग ताकि माँगने की आदत न पड़ जाय।

उससे मत माँग ताकि न मिलने पर तुझे शिकायत न करनी पड़े।

उससे मत माँग क्योंकि कुदरते कारसाज़ में शक पैदा होता है।

अगर वह नहीं तो तू किससे माँगता है? अगर वह है तो तू क्यों मांगता है?

अगर दुनिया में ख़ुदा नहीं तो तुझे ख़ुद मुकम्मिल बनना है और ख्वाहिश तुझे मुकम्मिल न होने देगी और अगर ख़ुदा है तो तेरा कमाल इसी में है कि कुछ न मांग क्योंकि तू उसका बेटा है।

अगर दुनिया में ख़ुदा नहीं है तो भी तू मत माँग क्योंकि फिर बाकी चीज़ें तुच्छ हैं। माँगने लायक नहीं है।

चीज़ें तुझको चाहें तू उनको क्यों चाहे?

तू हर आने वाली चीज़ को ख़ुशी का ख़िताब दे न कि उनसे ख़ुशी ले।

ख़ुशी तेरी चीज़ है—चीज़ों की नहीं। उनको अपनी ही चीज़ देकर उनका मोहताज न बन। जब तू न चाहेगा चीज़ें तेरे पीछे

इसलिये दौड़ेंगी कि उस वक़्त तू बादशाह होगा. ईश्वरीय प्रकाश तुझमें काम करेगा।

इन्सान के पास या तो चाहना ही रह सकता है और या चीज़। अब न चाहेगा तो चीज़ रहेगी। जब चीज़ के आने पर इच्छा पैदा होगी तो किसी तरह तकलीफ़ न देगी। इसलिए मत तलब चूँकि तलब तुझको छोटा बनाती है।

ख़्वाहिश का मालिक बन। ग़ुलाम नहीं। घोड़े की पूँछ न पकड़। ऊपर सवार हो।

मत तलब क्योंकि जो कुछ मौजूद है वही सब से बेहतर है।

मत तलब चूँकि सब कुछ तेरे लिए पहिले ही मुक़र्रर है।

मत तलब क्योंकि जो गुज़र गया जाने दे—जो आया नहीं उसकी इच्छा न कर। जो है सो है ही। इसी में ख़ुश हो जा। दूसरी हालत की तरफ़ मत देख चूँकि इस तरह छोटा बनना पड़ेगा और इच्छा पैदा होगी।

मौजूदा में ख़ुश रह क्योंकि यही तेरे लिए सर्वोत्तम है और तेरे मालिक की दी हुई है। तू मौजूदा से इत्तफ़ाक़ कर। आगे पीछे मत देख और इस तरह छोटा न बन।

मौजूदा हालत की तबदीली का ख़्याल ही दुःख है।

ख़्वाहिश इसलिये न कर कि मुख़ालफ़त पैदा होती है और ख़्वाहिश के मुआफ़िक़त में और ख़्वाहिश पैदा हो जाती है।

प्राप्ति की ख़्वाहिश न कर। अप्राप्त की इच्छा करके पाने लिये नये सामान ख़्वाहिश के पैदा न कर। जिस ख़्वाहिश की मुख़ालफ़त तुझे तंग न करे वह ख़्वाहिश न ख़्वाहिश के बराबर है और जिसकी मुआफ़िक़त ख़ुश न करे वह भी न ख़्वाहिश के बराबर है।

शतरंज के खेल की तरह दुनिया में ख़्वाहिश पैदा करना पर जीत हार से सम्बन्ध न रख। तेरी इच्छा न रहने पर अनादि इच्छा काम करेगी जो कि मुआफ़िक़त और मुख़ालफ़त के ऊपर है

इतना समझने पर भी जो ख्वाहिश न छोड़ सके तो तू इसको ईश्वर ही की तरफ से समझ। और इसके परिणाम को भी उसी की तरफ से ख्याल कर क्योंकि इन्सानी ताकत के खतम होने पर जो ख्वाहिश सामने आएगी वह इरादा ए-अजली का अक्स होगी और बुराई से बालातर होगी।

दुनिया से मत मांग क्योंकि वह खुद असीरे आरज़ू है। ख़ुदा से मत माँग क्योंकि वह बिन माँगे जानता और देता है।

उसकी रज़ा पर राजी रहने से ख्वाहिश मिट जाती हैं। अगर किसी तरह इच्छा नहीं छोड़ी जाती तो उसी से तर्के इच्छा की शक्ति माँग और फिर भी अगर माँगे बग़ैर न रहा जाय तो उसी से माँग।

दुनियाँ से अपने मतलब को म तलब कर और इस प्रकार अपने भगवान का ध्यान करता हुआ परमानन्द को हासिल कर।

समाप्त

ॐ शान्ति : शान्ति : शान्ति :